Part - C

खण्ड - ग

अध्याय- ७ : साठोत्तरी उपन्यास : पात्र- परिकल्पना

अध्याय- ८ : साठोत्तरी उपन्यास : परिवेश

अध्याय- ९ : साठोत्तरी उपन्यास : शिल्प के विभिन्न आयाम

अध्याय- १० ? साठोत्तरी उपन्यास : भाषा शैली

अध्याय- ११ : उपसंहार

परिशिष्ट - स

परिशिष्ट - र

परिशिष्ट - ग

परिशिष्ट - म

अध्याय - ७

साठोत्तरी उपन्यास : पात्र-परिकल्पना

उपन्यास मानव-जीवन का चित्र है। उसकी यथार्थता एवं प्रकारान्तर से सार्थकता इस बात पर निर्भर करती है कि उपन्यासकार कितने सशक्त रूप से समाज के चरित्रों को सही रूप में और साथ ही ऐसे कलात्मक ढंग से उभार पाया है जिसमें हम अपने या अपने पार्श्ववर्ती समाज-व्यक्तियों का रूप देख सकते या अपनी चेतना का विस्तार पा सकते हैं। पूर्ववर्ती विवेचन में स्पष्ट किया जा चुका है कि उपन्यास के पात्र सप्राण, सहज एवं विश्वसनीय होने चाहिए। किसी भी श्रेष्ठ उपन्यास को पढ़ते समय पाठक को यह अनुभूति सदैव होती रहनी चाहिए कि वह एक जीवन्त सृष्टि-सागर की लहरों से तरंगायित हो रहा है। उसके पात्रों की भावसत्ता से उद्वेलित हो रहा है। यहां एक बात ध्यातव्य है कि उपन्यास में पात्रों की श्रेष्ठता-निकृष्ठता का आधार उनमें निरूपित गुण-दोष नहीं प्रत्युत उनका सराफ्न है। दुष्टातिदुष्ट पात्र के आलेखन में भी यदि लेखक सफल होता है तो उस पात्र-निरूपण को श्रेष्ठ माना जायेगा।

शिक्षा, नये विचार, नयी व्यवस्था, विविध पक्षीय सामाजिक-सम्पर्क आदि के कारण मानव-चरित्र जटिल होता जा रहा है। पहले का मनुष्य अपने घर-गांव या नगर आदि के सीमित परिवेश की देन था। यात्रा के नाम पर अधिक से अधिक कुछ तीर्थ-स्थानों तक हो आता था। अत: बाहरी दुनिया से उसका सम्पर्क अत्यल्प ~~बन~~ रहता था। पर अब उसकी पहुंच चन्द्र तक हो गयी है। वह नित्यप्रति नये वैश्विक विचार-प्रवाहों से परिचित व प्रभावित हो रहा है। नयी औद्योगिक व्यवस्था ने पुरानी समाज-व्यवस्था एवं आस्थाओं को आपाद-मस्तक आलोड़ित ही नहीं कियाहै अपितु विच्छिन्न भी कर दिया है। इन स्थितियों में मनुष्य का चरित्र -- नगर और अब गांवों में भी -- कुछ उलझा हुआ-सा प्रतीत होता है।

साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में मनुष्य का उपरिनिर्दिष्ट रूप उभरकर आया है। उपन्यास के प्रारम्भ काल में चरित्र सीधे-सादे, `सु` और `कु` में विभाजित, लेखक द्वारा अनुशासित और कुछ-कुछ आरोपित-से मिलते थे। प्रेमचन्द ने सर्वप्रथम मानव-चरित्र की पहचान दी। प्रेमचन्दोत्तर काल में इसी मानव-चरित्र की अनबूझ गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न लेखकों द्वारा हो रहा है, परन्तु चरित्र हैं कि पकड़ में नहीं आ रहे। आज के व्यक्ति का जीवन भी प्रेमचन्द युग के व्यक्ति से नितान्त भिन्न कहा जा सकता है। अब एक परिमाणवाले (One-folded) फ्लैट चरित्र संसार में, अतः उपन्यास में भी, कम होते जा रहे हैं। द्विपरिमाण और त्रिपरिमाणवाले पात्र बढ़ रहे हैं। चरित्रों का आन्तरिक संघर्ष भी तीव्रतम होता जा रहा है क्योंकि व्यक्ति-जीवन में भी मनुष्य अनेक संघर्षों से गुज़र रहा है।

उपन्यास के पाठकों की बौद्धिकता का स्तर भी ऊंचा आया है। `चन्द्रकान्ता`, `चन्द्रकान्ता संतति`, `भूतनाथ` और `भाग्यवती` का पाठक अब `अपने-अपने अजनबी`, `अन्धेरे बन्द कमरे`, `राग दरबारी`, `आधा गांव` और `वे दिन` का पाठक हो रहा है। अब उसे लेखक द्वारा निरूपित परागत चरित्र-सृष्टि (second hand) से संतोष नहीं होता, वह उपन्यास को पढ़कर अपरागत (First-hand) चरित्र-सृष्टि को अपनी बुद्धि से समझना चाहता है। आज के कथाकार को भी अपने पाठकों की प्रबुद्धता पर पूरा विश्वास है। वह जहां तक हो सके स्वयं को उपन्यास से दूर रखने की सचेतनिक चेष्टा करता है। टी० डबल्यु० बीच ने अपनी पुस्तक `धी ट्वेन्टीएथ सेन्चुरी नावेल` में एक अध्याय का नाम ही `एक्ज़ीट आथर` अर्थात् `लेखक गायब` रखा है, जो इसी प्रवृत्ति का सूचक है।[१] आज का पाठक फुन्ननमियां (आधा गांव), नीलिमा और हरबंस (अन्धेरे बन्द कमरे), रंगनाथ और वैद्यजी (राग दरबारी), मिति और रोहित (टेराकोटा), विमल और चांद (सीमाएं टूटती हैं), सुषमा और नील (पचपन खम्भे लाल दीवारें), निर्मल पद्मावत और कल्याणी (मछली मरी हुई), रेखा (रेखा), नीलिमा और सहायबाबू (मुक्तिबोध) आदि पात्र क्या हैं यह नहीं सुनना चाहता, वे क्या हैं वह स्वयं देखना-परखना चाहता है।

---

१. डा० देवराज उपाध्याय : `नये उपन्यास स्वरूप और तत्व` : सं० रामगोपाल शर्मा `दिनेश` : पृ० १४।

'अन्धेरे बन्द कमरे' के नीलिमा, हरबंस, मधुसूदन तथा सुषमा श्रीवास्तव जैसे पात्रों में हमें महानगरीय जीवन की जटिलता, संश्लिष्टता, विसंवादिता एवं टूटन का परिचय मिलता है। प्रत्येक पात्र अनेक स्तरों से गुज़रता है। उदाहरणार्थ नीलिमा का चरित्र हरबंस, मधुसूदन, शुक्ला, लेखक का मनोविश्लेषण तथा स्वयं नीलिमा के कथन और कथन द्वारा एकाधिक स्तरों से होकर आता है। यही प्रवृत्ति हरबंस तथा अन्य पात्रों में भी मिलती है।

पात्रों के व्यक्तित्व के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि प्रत्येक पात्र निम्न-लिखित विशेषताओं से निर्मित होता है : (१) व्यक्तिगत विशेषता, (२) सामाजिक विशेषता और (३) मानवीय विशेषता।

(१) व्यक्तिगत विशेषता : व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण ही पात्र में वैशिष्ट्य आता है। संसार में कोई भी दो व्यक्ति नितान्त एक-से नहीं होते क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ निजी विशेषताएं रहती हैं जो उसे दूसरों से अलगाती हैं। यह निजी विशेषताएं भी दो प्रकार की होती हैं -- बाह्य एवं आन्तरिक। बाह्य विशेषताओं से बाहरी व्यक्तित्व (बाहरी आपा) का निर्माण होता है तो आन्तरिक विशेषताओं से आन्तरिक या भीतरी व्यक्तित्व (भीतरी आपा) का निर्माण होता है। बाह्य विशेषताओं में व्यक्ति का आकार, रूप, बोली, चाल-ढाल, तकिया कलाम आदि को लिया जाता है तो आन्तरिक विशेषताओं में उसके विशिष्ट गुणों को चित्रित किया जाता है।

'राग दरबारी' का रंगनाथ आधुनिक बिगड़े हुए स्वास्थ्यवाले छात्रों का का प्रतिनिधि है। उसके बाहरी व्यक्तित्व का लेखक ने बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्र अंकित किया है : "अहा। क्या हुलिया था। नवकंजलोचन, कंजमुख, करकंज, पदकंजारुणम। पैर खद्दर के पैजामें में, सर खद्दर की टोपी में, बदन खद्दर के कुर्ते में। कन्धे से लटकता हुआ भूदानी झोला। हाथ में चमड़े की अटैची।"[१]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रणीत 'चारु-चन्द्रलेख' उपन्यास में चन्द्रलेखा के रूप-लावण्य का वर्णन नागनाथ के द्वारा इस प्रकार हुआ

---

१. 'राग दरबारी' : श्रीलाल शुक्ल : पृ० १० ।

है : ' यह उन्नत ललाट, यह कुंचित केशराशि, यह दक्षिणावर्त रोम-राजि और यह तिलपुष्प के समान नासिका और घनी भृकुटियों के बीच सघन अराल रेखा -- ये तुम्हें सामान्य नारी नहीं रहने देंगी । तुम में रानी के सब लक्षण हैं । '[1] ऐसी उपन्यास में सीदी मौला नामक एक सिद्ध योगी का शब्द-चित्र लेखक इन शब्दों में खिंचते हैं : ' सीदी मौला सचमुच विचित्र मनुष्य था ।... उसके चेहरे पर केशों की दो लटें, कौड़ी-सी छोटी-छोटी आंखें और ज़रा-सी चपटी नाक के नीचे मूंछ के दस-पन्द्रह बाल थे । मुंह पर वह भस्म पोतता था, लेकिन लाल रेशम के चोगे से भी उसे परहेज़ नहीं था । उसके एक हाथ में एक टेढ़ी लकड़ी थी, जो खुरासान के किसी फकीर की दी बताई जाती थी और दूसरे हाथ में एक लम्बा चिमटा रहता था, जिससे वह अनेक प्रकार का काम लेता था । '[2]

' राग दरबारी ' के प्रिंसिपल साहब गुस्से की चरम दशा में स्थानीय अवधी बोली का प्रयोग करने लगते हैं । खड़ी बोली बोलते-बोलते क्रोध के क्षणों में वे तुरन्त अवधी पर उतर आते हैं । एक ही पीरियड में दो क्लासों को लेने के सम्बन्ध में मास्टर मालवीय के कुछ तर्क करने पर वे तुरन्त बिगड़ उठते हैं : ' मैं सब समझता हूं । तुम भी खन्ना की तरह बहस करने लगे हो । मैं सातवें और नवें का फर्क समझता हूं । हमका अब प्रिंसिपली करै न सिखाव भैया । जौनु हुकुम है, तौनु चुप्पे कैरी आउट करौ । समझ्यौ कि नहीं ? '[3] उसी प्रकार कमलेश्वर के ' डाक बंगला ' का डाक्टर हरा या किसी के भी सामने निरूपाय होने पर हमेशा कहता है -- ' अब जैसा तुम चाहो । ' उसके प्रत्येक कथन के अन्त में यह वाक्य ध्रुव-पंक्ति के समान रहता है । यह वाक्य उसका तकिया कलाम है जो उसके लुंज-पुंज व्यक्तित्व को भी घोषित करता है । ' चारु-चन्द्रलेख ' का धीर शर्मा महा पण्डित है और बात-बेबात अनेक शास्त्रों एवं पुराणों से श्लोकों को उच्चारित करता रहता है । ' वे दिन ' की मिसेज रायना ' विविड ' शब्द का प्रयोग बारंबार करती है, जैसे-- ' इन विन्टर वियना इज़ वेरी विविड... हिज़ (बातोंक) म्यूज़िक इज़ रियली विविड... चैक लोग जर्मनों से कहीं ज्यादा विविड हैं लेकिन उतने विविड नहीं जितने फ्रैंच । '[4]

---

१. ' चारु-चन्द्रलेख ' : पृ० २०-२१ । 2 वही ? पृ० ४० । ३. ' राग दरबारी ' : पृ० ३१ । ४. ' वे दिन ' : पृ० १७४ ।

पुनर्नवा ' (हजारीप्रसाद द्विवेदी) के देवरात एक धीर गम्भीर, विविध शास्त्रों के ज्ञाता तथा साहित्य एवं कला आदि में निपुण साधुचरित व्यक्ति हैं, जो अपने इन आन्तरिक गुणों के कारण पाठक का मन मोह लेते हैं। उसी उपन्यास के सुमेर काका फक्कड़ाना स्वभाव के हैं तो माढव्य शर्मा अपनी मनमौजी एवं हंसोड़ प्रकृति के कारण सबका मनोरंजन करते हैं। ' डाक बंगला ' के बतरा तथा ' मछली मरी हुई ' के निर्मल पद्मावत में अद्वितीय व्यावसायिक प्रतिभा के दर्शन होते हैं। ' मित्रो मरजानी ' की मित्रो तथा ' मछली मरी हुई ' की कल्याणी में दुर्दान्त काम-वासना से पीड़ित हैं तो ' सूरजमुखी अंधेरे के ' की रत्ती में ' जालिम ' यौन ठण्डापन मिलता है। इसी प्रकार फुन्ननमियां (आधा गांव), बी दारोगिन (काला जल), काली (धरती धन न अपना), धान मां (सांप और सीढ़ी), कृष्णकली (कृष्णकली), रेखा (रेखा), परबतिया (नदी फिर बह चली), राधिका (रुकोगी नहीं राधिका ?) चांदनी (आगामी अतीत), पवित्रा तथा तालेवर गोढ़ी (जुलूस) आदि पात्र अपने विशिष्ट आन्तरिक गुणों के कारण पाठक के स्मृति-पट पर दीर्घकाल तक अंकित रहेंगे।

(२) <u>सामाजिक विशेषता</u> : व्यक्ति के चरित्र-गठन में समाज का बड़ा योग रहता है। एक विशिष्ट प्रकार के समाज में रहनेवाले लोगों में कतिपय समान प्रकार की विशेषताएं स्वयंमेव आ जाती हैं। चर्चित उपन्यासों की पात्र-सृष्टि में ठाकुर जैपालसिंह (अलग अलग वैतरणी), ठाकुर महीपसिंह (जल टूटता हुआ), ठाकुर कुंवरपालसिंह (आधा गांव), चौधरी हरनामसिंह (धरती धन न अपना) आदि पात्र जमींदारी समाज से जुड़े हुए होने के कारण मिथ्याकुलाभिमानी एवं अक्खड़ प्रकृति के हैं। पुराने टूटते हुए मूल्यों के प्रति मोह और नये जमाने के प्रति घृणा की भावना उनमें समान रूप से विद्यमान हैं। फुन्ननमियां, अब्बू मियां, मौलवी बेदार, हकीम अली कबीर, जवाद मियां, सद्दन, तन्नू, कोमिला, झंगटिया बो, कुलसुम, सईदा (आधा गांव) : छोटी फूफी, सल्लो आपा, बी दारोगिन, मिर्जा करामत बेग, मोहसिन, रज्जू मियां (काला जल) : खलिल मियां (अलग अलग वैतरणी) आदि पात्र मुस्लिम समाज से सम्बन्धित होने के कारण उनमें भी कुछ समाजगत समानताएं उपलब्ध होती हैं। उसी प्रकार ' चारु-चन्द्रलेख ' की चारुनटी,

पुनर्नवा` की मंजुला एवं वसन्तसेना ( राज-नृत्यांगनाएं ) : `मुरदाघर` की मैना, जमिला, मरियम, रोज़ी, बशीरन ( वैश्याएं ) : `मुक्तिबोध` की नीलिमा, `टैराकोटा` की मिति, `रुकोगी नहीं राधिका ?` की राधिका, `अन्धेरे बन्द कमरे` की नीलिमा, `अन्तराल` की सीमा, `सीमाएं टूटती हैं` की चांद, `मछली मरी हुई` की कल्याणी, प्रिया और शीरीं मेहता, `वे दिन` की रायना तथा मारिया, `कृष्णकली` की कली ( आधुनिकाएं ) : `टैराकोटा` का रोहित, `अन्धेरे बन्द कमरे` का हरबंस और मधुसूदन, `सीमाएं टूटती हैं` का विमल सलूजा, `अन्तराल` का कुमार, ( आधुनिक शिक्षा-प्राप्त युवक ) : `जल टूटता हुआ` का सतीश, `अलग अलग वैतरणी` के विपिन और मास्टर शशिकान्त, `सूखता हुआ तालाब` का देवप्रकाश ( ग्रामीण परिवेश के शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति ) : `जल टूटता हुआ` का बनवारी, `सूखता हुआ तालाब` का बनारसी, `जुलूस` का तालेवर गोढ़ी, `नदी फिर बह चली` का मुकुन्द मांझी ( ओझा-सोखा ) : आदि पात्र अपने-अपने समाज की सभी विशिष्टताओं को लेकर अवतरित हुए हैं। पात्र का व्यवहार, मान्यताएं, विश्वास-अन्धविश्वास, बोल-चाल आदि सभी पर उसके समाज का प्रभाव अवश्यमेव पड़ता है। यहां केवल दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं। `पुनर्नवा` की मृणालमंजरी आचार्य देवरात की पालक-पुत्री है। उसकी शिक्षा-दीक्षा आचार्य देवरात जैसे साधुचरित पुरुष के अधीन प्राचीन परम्परा के अनुसार हुई है। अत: उसके व्यवहार में अत्यन्त शालीनता के दर्शन होते हैं और वह अपने पति गोपाल आर्यक को चाहनेवाली चन्द्रा को दीदी मानते हुए कहती है : "नहीं बहन, तुमको जब तक नहीं जाना था तब तक जो भी समझा हो, अब मानती हूं, हाय मेरे प्रियतम को कोई इतना निश्छल प्यार भी दे सकता है। नहीं बहन, मृणाल तुम्हारी दासी है। तुम सेवा की मूर्ति हो, प्रेम का विग्रह हो।"[1] दूसरी ओर `मुरदाघर` की मैना जो बम्बई क की झोंपड़पट्टी में अपने पति द्वारा वैश्या-जीवन व्यतीत करने पर विवश कर दी जाती है, उसे गालियां देते हुए कहती है : "मादरचोद।.... भैनचोद।... तेरी मां की...। तेरा कभी भला नहीं होगा।... साला.... हरामी... तेरा मुरदा निकलेगा.... कब होगा तेरा एकच धंदा ? मेरी मैयत का पीछू ? सुबू से

---

१. `पुनर्नवा` : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : पृ० १७७-१७८ ।

चुल्हा नहीं जला। शाम से कुतिया की माफिक रौंड मारती। एक घराक नहीं मिलता। रोज ऐसाइच। मैं क्या जिनावर हूं बोल ना ? क्या बाला था तू... चाली में खोली लेके देऊंगा... दो बखत का रोटी... लुगडा... बिलाउज... सनीमा लेके जाऊंगा... ये करूंगा... वो करूंगा। किधर गया वो सब ? गधी की गांड में घुस गया। साला झूठा। क्या हाल कर दिया मेरा। आज इसके नीचू तो कल उसके।"[1] एक स्त्री के मुंह से ऐसे शब्द अन्यथा असम्भव-से लगते, परन्तु यहां लेखक ने जिस समाज को उपस्थित किया है उसमें यह चरित्र सम्भव ही नहीं, पूर्णतया वास्तविक है। भाषा भी वैसी ही बम्बइया है जो एक वर्ग-विशेष के चरित्र को रूपायित करने में अत्यन्त सक्षम है। तात्पर्य यह कि मनुष्य के चरित्र-गठन में समाज भी एक बहुत बड़ा परिबल है।

(३) <u>मानवीय विशेषता</u> : उपर्युक्त व्यक्तिगत एवं सामाजिक प्रभावों के अतिरिक्त व्यक्ति के चरित्र-गठन में कुछ मूलभूत मानवीय वृत्तियां भी कार्य करती हैं। यह वृत्तियां देश-काल निरपेक्ष होती हैं और अच्छी बुरी दोनों प्रकार की हो सकती हैं, जैसे ईर्ष्या, घृणा, क्रोध, अहं, प्रेम, ममता, करुणा, वीरता, कायरता आदि। आज के जीवन की अनेकरूपता को पूर्ववर्ती पृष्ठों में लक्ष्य किया जा चुका है। इधर के उपन्यासों में उक्त मानवीय वृत्तियों का वैविध्य पूरे यथार्थबोध के साथ अंकित हुआ है।

'अन्धेरे बन्द कमरे' का हरबंस साहित्य तथा कला प्रभृति में अभिरूचि रखनेवाला इतिहास का प्रोफेसर है। वह स्वयं को अत्याधुनिक मानता है। पत्नी नीलिमा को चित्रकला, नृत्यकला आदि सीखने के लिए प्रेरित करता है। उसे पार्टियों तथा काफी-हाउसों में ले जाता है। परन्तु उसके भीतर बैठा हुआ मध्ययुगीन तथा मध्य-वर्गीय बुर्जुआ मानस उसे निरन्तर पीड़ित करता रहता है। नीलिमा के सम्पर्क में आनेवाले जीवन भार्गव तथा मधुसूदन से वह इसीलिए ईर्ष्या करता है।

'मुरदाघर' में जगदम्बाप्रसाद दीक्षित ने अत्यन्त घृणित एवं जघन्य समाज को उपस्थित किया है। परन्तु ऐसे पंकिल सरोवर में भी मानवता के कमल कहीं कहीं खिल उठते हैं। जो मैना रात-दिन पोपट को कोसती व

---

१. 'मुरदाघर' : पृ० १४-२१।

गालियाँ देती रहती है वह उसकी अप्रत्याशित मृत्यु पर ऐसे ही रोती है जैसे कोई सभ्य समाज की कुलवधू। जिस बशीरन को वह नित्यप्रति फटकारती थी, वही पोपट की मृत्यु के समय अपना 'धन्धा' छोड़कर उसके साथ 'मुरदा घर' तक जाती है। मरियम नामक वेश्या को बच्चा होने पर सभी वेश्याएँ उसके बच्चे को खिलाती हैं।

'जल टूटता हुआ' का दीनदयाल जो अत्यन्त क्रूर व निर्दय है और जो रात-दिन गरीब लोगों की जमीन हथियाने के चक्कर में व्यस्त रहता है, अपनी लड़की शारदा के लिए मक्खन-सा मुलायम है। 'सफेद मेमने' का ढोरों का डाक्टर मानमल देश, विश्व तथा मानता जैसे विषयों पर बातचीत करता है परन्तु कुछ समय के बाद दवाखाने के एकान्त में वह एक भैंस के साथ मैथुन भी करता है। यह कामवृत्ति के वैचित्र्य को घोषित करता है।

तात्पर्य यह कि प्रत्येक देश तथा समाज के मानव-चरित्र में कुछ नैसर्गिक प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। यह मूलभूत वृत्तियाँ ही सभी देशों के साहित्य को सभी देशकालों में समान रूप से आस्वाद्य बनाती हैं।

मानव-चरित्र को प्रभावित करनेवाले तत्व : मनुष्य मृतिका पिण्ड के समान है। उसे उसका सहज रूप प्रदान कर संस्कारित करनेवाले अनेक तत्व हैं, जो इन उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत हुए हैं। इनमें से प्रमुख तत्वों पर यहाँ विचार किया जा रहा है।

(१) आनुवंशिकता : मनुष्य के बाह्य एवं आन्तरिक दोनों प्रकार के व्यक्तित्व को प्रभावित करनेवाला एक मुख्य परिबल आनुवंशिकता है। मनुष्य के चरित्र पर उसके जन्मदाता माता-पिताओं का ही नहीं, वरन् उसके पूर्व की कई पीढ़ियों के संस्कार पड़ते हैं। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि हरिवंशराय बच्चन ने अपनी आत्मकथा 'क्या भूलूं क्या याद करूं?' में एक स्थान पर लिखा है कि उनके वंश में लड़के सदैव पिता की अपेक्षा पितामह से अधिक प्रभावित पाये गये हैं।[१]

---

१ 'क्या भूलूं क्या याद करूं' : पृ० ७८।

मनुष्य का आकार-प्रकार तथा रंग-रूप प्रायः उसके मां-बाप से समानता रखता है। कुछ वर्षों पूर्व अखबारों में योरोप की एक घटना प्रसिद्ध हुई थी, जिसमें एक अंग्रेज महिला ने हब्शी बच्चे को जन्म दिया था और इस बात को लेकर उसके अंग्रेज़ पति ने कोर्ट में विवाह-विच्छेद का प्रस्ताव रखा था। बाद में जांच-पड़ताल से ज्ञात हुआ कि उसमें उसका पति ही दोषी था। पत्नी से स सम्भोग करने के पूर्व वह एक वेश्यालय में गया था, जहां से हब्शी का शुक्रकण उसके यौनांग को लगकर उसकी पत्नी तक पहुंचा।

आलोच्य उपन्यासों में भी इस तथ्य के कई उदाहरण मिलते हैं। शिवानी द्वारा प्रणीत 'कृष्णकली' नामक उपन्यास में मुनीर नामक रूपजीवी का पात्र आता है। वह नेपाल के किसी राणा की रखैल थी। उस रौबदार पेशेवर महिला का सर्वोच्च विदेशी समाज में उठना-बैठना था। बड़े-बड़े भारतीय अफसर उसके एक-एक भ्रू-विलास पर निसार जाते थे। उसकी तीन पुत्रियाँ -- माणिक, हीरा और पन्ना -- तीन भिन्न-भिन्न पुरुषों से हुई थी। 'बड़ी माणिक जिसकी छोटी नाक, छोटी आंखें और सामान्य-सी बात पर ओठों पर थिरकने वाली हंसी की एक-एक रेखा, अपने राजवंशी पिता राणा से मिलती थी, बाप की दुलारी और मां की मुंहलगी माणिक स्वभाव से ही क्रूर, जिद्दी और अहंकारी थी।'[1] दूसरी आबनूस जैसे रंग, घुंघराले छोटे-छोटे बाल, चिपटी फैली नाक और मोटे लटके हुए ओठवाली हीरा लाट साहब के दामाद के साथ आये हुए उनके हब्शी नौकर रौबी की लड़की थी। रावण-सी देह और महिषासुर के-से चेहरेवाले उस भयानक हब्शी ने जब अपने भारी मांसल कण्ठ से 'वीप नो मोर माई लेडी, ओह वीप नो मोर टु डे' गाया तो मुनीर उसकी कला पर रीझ गयी थी।[2] और तीसरी गौर वर्ण, नीली आंखें और सुन्दर सुनहले केशवाली पन्ना मुनीर के ~~युवक~~ विदेशी प्रेमी सुभग व्यक्तित्व के स्वामी ~~स्मिथ~~ रोबर्टसन की भेंट थी।[3] स्वयं पन्ना जब कली को लेकर माणिक के पास जाती है तो उसके श्याम वर्ण को लक्ष्य करके सबको बड़ा आश्चर्य होता है। वस्तुतः कली पन्ना की लड़की नहीं थी। अल्मोड़ा

---

१. 'कृष्णकली' : पृ० २० । २. वही : पृ० २१ । ३. वही : पृ० २१ ।

के कुष्ठाश्रम में पार्वत्य सौन्दर्य की मूर्ति पार्वती तथा सुदर्शन पठान असदुल्ला खां की वह सन्तान थी। आश्रम की सन्त विदेशिनी डाक्टर पैट्रिक (रोज़ी) के व्यक्तिगत अनुनय पर पन्ना ने उसे पुत्री रूप में स्वीकार किया था, क्योंकि उसकी पुत्री जन्मते ही मर गयी थी। यही कारण है कि 'कान्वेण्ट की छात्रा' कली में उसके माता-पिता की चंचलता एवं तस्करी वृत्ति पर्याप्त मात्रा में मिलती है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रणीत उपन्यास 'चारु-चन्द्र-लेख' में चन्द्रलेखा जब नागनाथ को कहती है कि वह एक सामान्य किसान की पुत्री है तब नागनाथ कहता है कि "कौन कहता है देवी, तुम सामान्य कृषीवल-किशोरिका हो ?"[1] और नागनाथ की यह बात सत्य प्रमाणित होती है जब विद्याधर भट्ट यह घटस्फोट करते हैं कि चन्द्रलेखा में महाप्रतापी चन्देलों का दुर्धर्ष रक्त प्रवाहित हो रहा है। वह महाप्रतापी चन्देल-नरेश परमर्दिदेव की दौहित्री थी।[2]

'मछली मरी हुई' का डा० रघुवंश जानता है कि निर्मल पद्मावत की साधारणता कल्याणी की पुत्री प्रिया ही बड़ी होकर लौटा सकेगी, क्योंकि वह हूबहू कल्याणी जैसी है। 'आपका बण्टी' का बण्टी भी बहुत कुछ अपने पिता अजय पर गया है। वह कुछ कुछ 'इगोइस्ट' और 'पजैसिव' प्रकृति का है। अजय का स्वभाव भी वैसा ही था। वह खड़े-खड़े थालियां फेंकता था और ये कटोरी फेंकता है। बण्टी को देखकर एक बार शकुन के वकील चाचा ने कहा था : "कभी कभी आश्चर्य होता है कि कैसे आदमी एक छोटे-से अणु में अपना चेहरा, मोहरा, आदत, स्वभाव, संस्कार सब-कुछ अपने बच्चे में सरका देता है।"[3]

'प्रश्न और मरीचिका' का जयराज उपाध्याय आई० सी० एस० के सिलसिले में जब इंगलैण्ड जाता है तब एक हंगेरियन जिप्सी लड़की के नृत्य से प्रभावित होकर उससे विवाह कर लेता है। सैंकड़ों वर्ष पहले खानाबदोशों का एक कबीला हिन्दुस्तान से आकर हंगरी में बस गया था। उसी कबीले में मारिया गियोवानी (हंगेरियन लड़की) की माता का जन्म हुआ था। अतः मारिया को भी नाचने-गाने का बेहद शौक था। फलतः जयराज जैसे आई०सी०एस०

---

१. 'चारु-चन्द्रलेख' : पृ० २० । २. वही : पृ० ६५-६६ ।
३. 'आपका बण्टी' : पृ० ११६ ।

अफसर की बीबी होने के बावजूद जब फ्रान्स का प्रसिद्ध नर्तक जा पियरा बम्बई आता है तब वह उसके साथ पागलों की तरह नाचती है क्योंकि वह जिप्सी रक्त जो उसकी माता से उसे मिला था उसमें जीवन और उल्लास के प्रति आत्मसमर्पण की भावना थी, किसी प्रकार का दुराव-छिपाव नहीं, किसी तरह का संशय नहीं।[1]

स्त्री की गर्भवती अवस्था के समय की परिस्थितियों का भी शिशु के चरित्र पर प्रभाव पड़ता है। युद्ध के दिनों में पैदा होनेवाले बच्चों में कई बार अनेक प्रकार की शारीरिक क्षतियां देखी गयी हैं। महाभारत का अभिमन्यु जन्म-प्रसंग भी इस बात का एक अच्छा उदाहरण है। पुनर्नवा की मृणालमंजरी हलद्वीप की नगरश्री मंजुला की औरस पुत्री थी। पर मृणाल जब गर्भ में थी तब का उसकी मां का चिन्तन उसे एक सच्चरित्र नारी बना देता है। स्वयं मंजुला के शब्दों में "जब दिनों यह उल्लास अपनी चरम-सीमा पर था, उन्हीं दिनों में मेरी कुक्षि में एक कन्या अयाचित, अवांछित, अनाहूत आ गयी। मैं नहीं जानती कि उसके मृण्मय देह का पिता कौन है। पर इतना निश्चित है कि इसके चिन्मय रूप के पिता देवरात हैं।"[2] तात्पर्य यह कि व्यक्ति के चरित्र-गठन में आनुवंशिकता का योगदान नगण्य नहीं है।

(२) शैशवकालीन प्रभाव : छोटे शिशु का मन कोम्प्युटर जैसा होता है। अपने आसपास घटित होनेवाली सूक्ष्मातिसूक्ष्म घटनाओं का उसके मनोमस्तिष्क पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। इस अवस्था में पड़े हुए प्रभाव चिरस्थायी होते हैं। कोई भी व्यक्ति बड़ा होकर कैसा बनेगा उसका बहुत कुछ आधार उसके शैशव पर है। अतः बच्चों की उपस्थिति में माता-पिता का व्यवहार बड़ा ही सन्तुलित होना चाहिए। उसमें भी छः से बारह वर्ष की अवस्था बड़ी नाजुक होती है। इस अवस्था में उनका सविशेष ध्यान रखना चाहिए।

शैशवकालीन प्रभावों की दृष्टि से मन्नू भण्डारी का 'आपका बण्टी' नामक उपन्यास विशेष रूप से उल्लेखनीय है। शकुन और अजय के 'अहं' की टकराहट का बलि निर्दोष बण्टी को होना पड़ता है। माता-पिता के

---

१. 'प्रश्न और मरीचिका' : भगवतीचरण वर्मा : पृ० २५-२६।
२. 'पुनर्नवा' : पृ० ५६।

झगड़े में उसका जीवन चौपट हो जाता है। बण्टी अधिकांशतः शकुन के पास ही रहता है। शकुन लड़कियों के कालेज में प्रिंसिपल है। उसके कालेज जाने पर वह फूफी (नौकरानी) के पास रहता है। अतः उसका समुचित विकास नहीं हो पाता। वह हर समय शकुन से चिपका-चिपका रहता है। इस सन्दर्भ में वकील चाचा का यह कथन उल्लेखनीय है : " तुम यह मत सोचो कि केवल अजय ही ऐसा चाहता है, मुझे खुद ऐसा लगता है कि बण्टी को तुम्हें एकदम होस्टल भेज देना चाहिए। इट इज़ ए मस्ट।... ज़रा सोचो स्कूल के अलावा बण्टी सारे दिन तुम्हारे साथ रहता है या तुम्हारी उस फूफी के साथ। तुम्हारे यहां अधिकतर महिलाएं ही आती होंगी। यानी इसकी क्या कंपनी है? बहुत हुआ पड़ोस के एक-दो बच्चों के साथ खेल लिया। पर एक आठ-नौ साल के ग्रोइंग बच्चे के लिए यह तो कोई बात नहीं हुई न। ही शुड ग्रो लाइक ए बाय, लाइक ए मैन।"[1]

शकुन जब डा० जोशी के साथ पुनर्विवाह कर लेती है तब तो बण्टी की स्थिति और भी विषम हो जाती है। वह उस नये घर में 'एडजस्ट' नहीं हो पाता। डा० जोशी के बच्चे -- जोत और अमि के सामने वह स्वयं को हीन समझता है, क्योंकि बण्टी की तुलना में उन्हें अधिक महत्व मिलता है।[2] पहले वह शकुन के साथ सोता था, अब उसे अलग सुलाया जाने लगा। शकुन और फूफी से सुनी हुई कहानियों के राक्षस और भूत-प्रेत उसे स्वप्नों में आकर डराने लगे। फलतः वह पथारी-में ही-पिसाब-कर देता-है- बिस्तर में पिसाब करने लगता है। बाल-मनोवैज्ञानिकों के अनुसार जिन बच्चों के मां-बाप परस्पर झगड़ते हैं, या एक दूसरे से अलग रहते हैं, या तलाकयाफ्ता हैं और जिन्हें एक घर से दूसरे घर भटकना पड़ता है उनमें यह आदत प्रायः देखी जाती है।[3]

एक दिन रात्रि के समय वह डा० जोशी को उसकी मम्मी के साथ नंगे-बदन सोते हुए देख लेता है। फिर तो रातदिन उसके सामने वही नंगापन खेलता रहता है। नहाते समय अपने अंगों की तुलना डा० जोशी के अंगों से करता है और लिंग को हाथ में लेकर देखता है।[4] ड्राइंग के क्लास में वह बोतल को देखकर डा० जोशी के अंगों के विषय में सोचना शुरू कर देता है : " फिर बार्ड पर बनी

---

१. 'आप का बण्टी' : पृ० ४१। २. वही : पृ० १०१। ३. द्रष्टव्य : 'तमारुं बाळक : ६ थी १२ वर्ष सुधी' : माया मेहता : पृ० १४१-१४२।
४. आपका बण्टी : पृ० १५०।

बोतल एकाएक डाक्टर साहब की टाँगों के बीच में आकर उल्टी लटक गई। छी-छी फिर वही सब बातें। उसने मन ही मन प्रामिस किया था कि वह अब कभी ऐसी गन्दी बात नहीं सोचेगा, पर बात है कि फिर भी मन में आ ही जाती है।[1] इस प्रकार एक अच्छा-खासा मेधावी बच्चा दिन-प्रतिदिन डल होता जाता है।

डॉ० राही मासूम रज़ा कृत 'दिल एक सादा कागज़' में उसके नायक रफ़्फ़न यानी सैयद रफ़अत जैदी उर्फ़ बाग़ी आज़मी पर शैशव काल में पड़े हुए प्रभावों का बड़ा ही सूक्ष्म व मनोवैज्ञानिक चित्रण लेखक ने किया है। प्रथम बत्तीस पृष्ठों का 'जैदी विला का भूत' नामक प्रकरण इसी के आलेखन में आया है। रफ़्फ़न 'जैदी विला' नामक उस कोठे में ऐसे अनेक दृश्य देखता है और अनेक बातें सुनता है जो छोटे बच्चे को न देखनी चाहिए न सुननी। भाई जानू और गुलबहरी के सम्बन्ध, भाई जानू और जन्नत बाजी के सम्बन्ध, मौलवी साहब और बावर्ची अब्दुस्समद खाँ दोनों का नौकर शफ़ुआ के साथ का घृणित सम्बन्ध, माली दुखिया का उसकी पत्नी के साथ का सम्भोग-दृश्य आदि बालक रफ़्फ़न पर बुरी तरह से हावी है। इसी उपन्यास के मियाँ बाकर हुसैन 'आतिश' (बिक्कू) बचपन से ही शायर बनने के चक्कर में उम्र में बड़ी औरतों से खयाली दुनिया में जिस्मानी रिश्ते जोड़ते रहते हैं, जिसके परिणामस्वरूप उसे हस्तमैथुन की आदत पड़ जाती है।[2]

डा० रज़ा के ही सुप्रसिद्ध उपन्यास 'आधा गाँव' का कमालुद्दीन उर्फ़ कम्मो का शैशव एक प्रकार के सन्नाटे में गुज़रा क्योंकि अपनी दाग़ी हड्डी के कारण वह अन्य बच्चों से कतराता रहता है। उसकी माँ रहमान-बो जवादमियाँ की रखैल थीं। माँ की यह कलंक कथा कम्मो के जीवन का बोझ बन जाती है। वह दूसरे बच्चों के साथ कभी सहज नहीं बन पाता है। परिणामतः वह एकान्त-प्रिय होता जाता है और अब उसका भी ज्यादा वक्त पाखाने में गुज़रता है। चेहरा दिन-ब-दिन पीला पड़ता जाता है। उस पर तक्कन मियाँ उसे गोदाम ले जाते हैं। तक्कन मियाँ के साथ गोदाम जाने का मतलब सबको मालूम था। लड़कों ने जुमलेबाज़ी शुरू कर दी और कम्मोने घर से निकलना बिलकुल बन्द कर दिया।[3] काम शास्त्रियों के मतानुसार जो बच्चा हीनता-ग्रन्थि से पीड़ित

---

१. 'आपका बण्टी' : पृ० १५६। २. 'दिल एक सादा कागज़' : पृ० १५१।
३. 'आधा गाँव' : पृ० २४८।

होकर अपने हमजोलियों में पूर्णतया घुल-मिल नहीं पाता और जो अधिकांशत: एकान्त में रहना पसन्द करता है, उसमें हस्तमैथुन की आदत प्राय: पायी जाती है क्योंकि जननेन्द्रिय की उत्तेजना से प्राप्त आनन्द से वह अपने एकान्त को भरने की कोशिश करता है।

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'सूरजमुखी अंधेरे के' की रत्तिका (रत्ती) पर किसी दुराचारी पुरुष द्वारा शैशव काल में ही बलात्कार होता है। यह घटना उसके मनो-मस्तिष्क पर ऐसी छा जाती है कि वह 'सेडिस्ट' हो जाती है। पुरुषों को अपनी ओर खिंचकर तड़पाने में उसे आनन्द आने लगता है। सोबतीजी के ही उपन्यास 'मित्रो मरजानी' की मित्रो में वासना की सरिता हिल्लोरें लेती है क्योंकि मां की चरित्रहीनता के कारण उसका बचपन गन्दे वातावरण में ही व्यतीत हुआ था।

'महा नगर की मीता' का अजित शैशवावस्था में ही माता-पिता के आश्रय को खो बैठता है, अत: असलामती का भय उसके चरित्र पर बुरी तरह से हावी हो जाता है। उसके सभी कार्य-कलाप -- मीता से प्रेम और लग्न भी -- इसी अस्तित्व-रक्षा हेतु होते हैं। ऐसे लोग अपने व्यक्तिगत जीवन में बड़े स्वार्थी होते हैं। दूसरे लोगों का उपयोग वे केवल 'सोपानों' के लिए करते हैं और सामाजिक या नैतिक उत्तरदायित्व जैसी कोई चीज़ उनमें नहीं होती।

ओमानन्द सारस्वत के उपन्यास 'अनसुलझी गांठें' की रामप्यारी के मन में सच्चरित्रता एवं नैतिकता का कोई मूल्य नहीं रहता और उसके जीवन में अनेक पुरुष आते हैं क्योंकि किशोरी अवस्था में ही भारत-पाकिस्तान के कौमी दंगों में उस पर अनेक मुसलमान युवकों द्वारा बलात्कार हुआ था। ऐसे कौमी दंगे में ही पिता तथा भाई की निर्मम हत्या तथा मां पर किये गये पाशविक बलात्कार के कारण ही 'सफेद मेमने' की बन्नो 'ठण्डी औरत हो जाती है, वैसे उसकी इस परिणति में उसकी मामी का भी हाथ है।

हिमांशु श्रीवास्तव कृत 'नदी फिर बह चली' की परबतिया मासोकवादी (आत्मपीड़क) है, क्योंकि शैशव काल में ही मातृहीना परबतिया अपनी सौतेली मां के दुर्व्यवहार का शिकार होती है। सौतेली मां के डर के कारण गम के आंसुओं को पीना

कारण गम के आंसुओं को पीना पड़ता है- उसकी प्रकृति का ही एक अंग बन जाता है। जिन बच्चों के जीवनाकाश के उष:काल में ही ऐसी दुर्घटनाओं के बादल छा जाते हैं, प्राय: देखा गया है कि वे आवश्यकता से अधिक गम्भीर व समझदार हो जाते हैं। शिशु सहज चंचलता मानो उनसे रूठ जाती है।

'डाक बंगला' की इरा भटक जाती है क्योंकि शैशव काल में ही उसे माता-पिता का सहज वात्सल्य नसीब नहीं होता। मां की मृत्यु के बाद पिता से जो वात्सल्य व ममता मिलना चाहिए, वह उसे नहीं मिलता। उसके ही शब्दों में :" वे कभी मेरे लिए प्यार भरे दोस्त नहीं बन पाये। मेरी चाहतों को नहीं समझ पाए। वे हमेशा मेरे सामने सवाल बनकर ही खड़े हुए और हमेशा मुझ से जवाब ही मांगते रहे। और यही जवाब देने के लिए मैं गहरे पानी में उतर गई। बातें तो बहुत छोटी होती हैं पर उनके जवाब बहुत बड़े हो जाते हैं। और जिस घर में मां न हो, उस घर के बच्चों को जिन्दगी भर ये बड़े बड़े जवाब देने पड़ते हैं... अपने अस्तित्व के लिए, आकांक्षाओं और सपनों के लिए, व्यवहार और सामाजिक स्थिति की गरिमा के लिए... यहां तक कि रहन-सहन और खाने-पीने के लिए भी।"[१]

'सफेद मेम्ने' की बन्नो में शरीर के लिए उसके अन्दर का सुख-भरा आकर्षण बुझ गया था और वह एक नि:संग बेजुबान हरकत भर रह गई थी क्योंकि उसने अपनी मामी के द्वारा सैंतालीस के दंगों की बर्बरता के बारे में सुन रखा था --" मामी ने ही उसे सैंतालीस के दंगों की कहानी सुनाई थी, जिन्होंने बन्नो के मां-बाप और भाई को सदा के लिए मिटा दिया था। किस तरह से बाप की आंखें फोड़ दी गयीं, पेट में खंजर भोंककर मांस निकाला गया, किस तरह भाई की चमड़ी को उबलते हुए आलू की तरह छीला गया, बोटी बोटी काटकर फेंक दी गयी, कैसे आठ-नौ जनों ने मां की नंगी देह को रौंदा, स्तनों की घुंडियां उतार ली और कूल्हों के बीच में मिरची का चूरा भर दिया --सुनते ही बन्नो बेहोश-सी हो गयी थी।"[२]

---

१. 'डाक बंगला' : कमलेश्वर : पृ० ३५।
२. 'सफेद मेम्ने' : मणि मधुकर : पृ० ८१।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आलोच्य उपन्यासों की चरित्र-सृष्टि में शैशवकालीन प्रभावों का प्रतिफलन यथार्थत: हुआ है जिस में आवश्यकतानुसार बाल-मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का भी यथोचित उपयोग हुआ है।

(३) शिक्षा : आधुनिक उपन्यासों में जो चरित्रगत वैविध्य उपलब्ध होता है, उसमें शिक्षा व्यवस्था का मुख्य प्रभाव है। आधुनिक शिक्षित मनुष्य निरन्तर परिवर्तित होनेवाले वैश्विक प्रवाहों से परिचित रहता है। अब वह करणीय-अकरणीय के प्रश्न को सीमित परिवेश में नहीं सोचता। फलत: विचार तथा कार्यों के अनेक नये आयाम आधुनिक उपन्यासों के चरित्रों में प्रतिबिम्बित हो रहे हैं।

हिन्दी का प्रथम उपन्यास `भाग्यवती` ही इसका सबल प्रमाण है। भाग्यवती शिक्षित होने के कारण ही पति द्वारा त्याग दिये जाने पर भी सम्मानित ढंग से जीवन-यापन कर सकती है। आज की स्त्री `स्त्री सुबोधिनी` पढ़नेवाली, अज्ञ, पति-परायणा, अबला नारी मात्र नहीं-है- रही है : वह मार्क्स, लेनिन, गांधी, माओ, अरविन्द, फ्रायड, युंग जैसे विचारकों तथा कला, साहित्य, इतिहास, दर्शन, राजनीति आदि विषयों पर सुचारू रूप से अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सकती है। प्रत्येक क्षेत्र में वह पुरुष की स्पर्द्धा कर रही है। रूसी महिला अवकाश-यात्री वैलेन्तीना इसका ज्वलन्त उदाहरण है। यह शिक्षा द्वारा ही सम्भव हो सका है।

`टेराकोटा` की मिति आई० ए० एस० में उत्तीर्ण होकर अपने परिवार को भीषण दरिद्रता के दलदल से बाहर ले आती है। `पचपन खम्भे लाल दीवारें` की सुषमा ने प्रथम श्रेणी में एम० ए० किया है और इसी बल पर एक कालेज में व्याख्याता के पद पर आसीन होकर अपने परिवार को पोषती है, क्योंकि उसके पिता `फालीज़` के शिकार हुए हैं और घर का आर्थिक सुकान उसे ही संभालना पड़ता है। `अन्धेरे बन्द कमरे` की नीलिमा एक आधुनिक शिक्षा-प्राप्त महिला है। साहित्य, कला, राजनीति आदि विषयों में उसका दखल है। वह अकेली योरोप भी चली जाती है। वहां उमादत्त की नृत्य-मण्डली के साथ वह समूचे योरोप का दौरा भी कर लेती है। वह अब मध्यकालीन, `फ्यूडल`, छुई-मुई नारी नहीं रह गयी है जो पांच मिल की यात्रा भी अकेले तय नहीं कर सकती।

'प्रेम अपवित्र नदी' की शिवानी 'कपूरवाली' तथा अपने पति के खिलाफ़ विद्रोह करती है। वह अपने पति से तलाक लेकर उसी परिवार के विष्णुपद के साथ विवाह-सूत्र में बंध जाती है। नारी-चरित्र के बदले हुए यह तेवर आधुनिक शिक्षा का ही परिणाम है। डा० घोष के कहने पर कि उसका पति कुमार उसे 'डाइवोर्स' नहीं देगा, वह दहाड़ उठती है: 'पर 'डाइवोर्स' मैं लूंगी। वह कौन होता है, न देनेवाला। मैं कोर्ट जाऊंगी और साबित करूंगी उसकी बेरहमी, उसके अत्याचार और ज़रूरत पड़ी तो उसकी सारी चरित्रहीनता का पर्दाफाश करूंगी। ईश्वर की कृपा से मैं नारी-भावुकता से मुक्त हो चुकी हूं।'[1]

वैसे शिक्षा के परिणामस्वरूप ही नारी-चरित्र में अनेक ग्रन्थियां, अत: जटिलता की भी वृद्धि हुई है। 'टेराकोटा' की मिति स्वयं को अति-व्यस्तता में मैं कैद कर लेती है, परन्तु छोटी बहन के विवाह पर उसकी निराशा प्रच्छन्न नहीं रह पाती। आई० ए० एस० आफिसर मिति चाहती है कि उसकी बहिन की शादी सम्पूर्णतया परम्परागत विधियों-रीतियों से ही सम्पन्न हो। इसमें उसकी दमित वासनाओं का ही 'प्रोजेक्शन' हुआ है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' तथा 'अन्तराल' की महिला अध्यापिकाओं के आन्तरिक जीवन की नीरसता एवं शुष्कता, उनके वार्ता-विषय, उनकी पारस्परिक ईर्ष्या तथा कर्कशता के पीछे भी उनकी दमित वासनाओं के संस्कार काम करते हैं। संस्कृत जैसे सरस विषय की व्याख्याता मिस शास्त्री चौबीसों घण्टों लड़कियों पर चिखती-फीखती और उनकी जासूसी करती रहती है क्योंकि अविवाहित जीवन के ठूंठ अकेलेपन ने उसकी जीवन-लता को भी ठूंठ बना दिया है। ऐसी महिलाओं के द्वारा कुत्ते-बिल्लियों को पालने के पीछे प्राय: कई बार इसी जानलेवा अकेलेपन को भरने का प्रयास रहता है। 'अन सुलझी गांठें' की मायादेवी की यौन-विकृतियां भी अविवाहित जीवन का परिणाम है। नारी-जीवन की उपर्युक्त कुण्ठाओं के पीछे शिक्षा का सीधा सम्बन्ध तो नहीं, परन्तु परोक्ष अवश्य है। कुछ भी हो, शिक्षा ने अच्छे-बुरे दोनों सन्दर्भों में नारी-चरित्र को अवश्यमेव प्रभावित किया है। नीलिमा, राधिका, मिति, रेखा, कृष्णकली, सुषमा, वसुधा, कंचन (छायामत छूना मन), चांद (सीमाएं

---

१. 'प्रेम अपवित्र नदी' : लक्ष्मीनारायण लाल : पृ० २२५।

टूटती है, रायना रैमान (वे दिन), कल्याणी, शीरीं मेहता, प्रिया (मछली मरी हुई) आदि स्त्री-पात्र इसके उदाहरण हैं।

आधुनिक शिक्षा के कारण स्त्री ही नहीं अपितु पुरुष के जीवन में भी अनेक परिवर्तन आये हैं। पहले (मध्यकाल में) व्यवसाय प्रायः वंश-गत होता था। किसान का लड़का किसान और बढ़ई का लड़का बढ़ई होता था। अब ऐसा नहीं रहा है। लोग पढ़-लिखकर कोई भी व्यवसाय अंगीकृत कर विश्व के किसी भी कोने में जा सकते हैं। फलतः गांव टूट रहे हैं, परिवार विभक्त हो रहे हैं, मूल्य टूट रहे हैं और व्यक्ति के चरित्र में भी अनेक प्रकार की विसंगतियां व जटिलताएं प्रवेश कर रही हैं। 'वे दिन' का नायक प्राग में रहता है। देश से बहिन की चिट्ठी आयी है, परन्तु दो-एक दिन तक उसे वह चिट्ठी खोलने का उत्साह तक नहीं होता है: 'बहन का पत्र अब भी मेरी जेब में था, लेकिन मैंने उसे अगले दिन के लिए छोड़ दिया। स्लीवोवित्से (एक प्रकार की शराब) के बाद कुछ भी सोचने या पढ़ने की इच्छा नहीं रह गयी थी।'[1] 'वे दिन' के सभी पात्र -- उसका नायक, मिसेज रायना रैमान, टी०टी०, फ्रान्ज़, मारिया -- एक अजीब-सी मायूसगी लिए हुए दिखते हैं क्योंकि प्रत्येक पात्र का अतीत यूरोप की युद्धोत्तर पीढ़ी की अभिशप्त छाया से जुड़ा हुआ है।

'प्रेम अपवित्र नदी' के विष्णुपद, विजयकुमार: 'प्रश्न और मरीचिका' के उदयराज, जयराज, रामकुमार गाबड़िया: 'अन्धेरे बन्द कमरे' के हरबंस, मधुसूदन, पोलिटिकल सेक्रेटरी: 'डाक बंगला' के तिलक, मि० बतरा, मेजर सोलंकी: 'रुकोगी नहीं राधिका?' के मनीश, अक्षय, डैन, दिवाकर: 'आगामी अतीत' के डा० कमल बोस, प्रशान्त आदि नगरीय जीवन के पुरुष-पात्र हमारी वर्तमान शिक्षा की ही सृष्टि हैं।

अब गांवों में भी शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा है। लोग पढ़कर नगरों में बस रहे हैं। कुछ लोग गांवों में ही नौकरी वगैरह कर लेते हैं। फलतः वहां का जीवन भी तरंगायित हो रहा है। 'जल टूटता हुआ' के सतीश,

---

१. 'वे दिन': निर्मल वर्मा: पृ० ३७।

चन्द्रकान्त, रामकुमार : `अलग अलग वैतरणी` के विपिन, डा० देवनाथ, मास्टर शशिकान्त : `सूखता हुआ तालाब` के देव प्रकाश, जैराम, मोतीराम : `राग दरबारी` के रंगनाथ, मास्टर खन्ना, मास्टर मालवीय, प्रिंसिपल : `आधा गाँव` के तन्नू, सद्दन, मासूम आदि ग्रामीण परिवेश के शिक्षित पात्र हैं। शिक्षा के कारण इनके बाह्य तथा आन्तरिक व्यक्तित्व में एक निश्चित परिवर्तन आया है, जो पिछली पीढ़ी में लक्षित नहीं होता ।

(४) वातावरण : मनुष्य का चरित्र वातावरण से भी पोषित होता है। ग्रामीण, कस्बाई, पार्वतीय, नगरीय एवं महानगरीय वातावरण के अनुरूप उपन्यास में चरित्रों के रंग-रूप, वाणी-व्यवहार तथा गुण-दोष पाये जाते हैं। मनुष्य का चरित्र भी देशकाल सापेक्ष होता है। चरित्र की वास्तविकता वातावरण में ही प्रतिफलित होती है। वातावरण के अनुसार ही ही हम भाषा सीखते हैं, वस्त्र पहनते हैं, खान-पान के तौर-तरीके अपनाते हैं। तात्पर्य यह कि हमारा पारिवारिक जीवन, हमारे रीति-रिवाज, हमारी परम्पराएँ और विश्वास भले ही आनुवंशिक हों किन्तु उनका पैटर्न वातावरण पर निर्भर रहता है।[१] एक विशिष्ट परिवेश का पात्र उसी प्रकार के परिवेश में यथार्थ प्रतीत होता है। `मछली मरी हुई` का निर्मल पद्मावत कलकत्ता के परिवेश में तो जमता है, परन्तु उसे किसी कस्बाई परिवेश में बताया जाय तो वह अविश्वसनीय लगेगा । सतीश (जल टूटता हुआ), देव प्रकाश (सूखता हुआ तालाब), और काली (धरती धन न अपना) का संघर्ष हरबंस (अन्धेरे बन्द कमरे), विष्णुपद (प्रेम अपवित्र नदी), और कुमार का संघर्ष नहीं बन सकता ।

`पुनर्नवा` का परिवेश चौथी शताब्दी का भारत है, अत: आचार्य देवरात के आश्रम का परिवेश तदनुरूप है। उनके शिष्यों में गोपाल आर्यक (जो बाद में समुद्रगुप्त का एक प्रधान सेनापति बनता है) और श्यामरूप उर्फ शार्विलक

---

१. "Our inherited structures make us human, Our environment determines the style of humanness we acquire."
:Herbert Sorenson and Marquerite Malm: Psychology for Living : P. 16.

(जो बाद में प्रसिद्ध मल्ल होता है) जैसे पुरुष-सिंह मिलते हैं । `राग दरबारी` में आधुनिक भारत के एक पिछड़े हुए ग्रामीण परिवेश को लिया गया है, अत: उसमें वैद्यजी का `छंगामल इण्टर मीजिएट कालेज` है जिसमें मास्टर मोतीराम जैसे अध्यापक हैं जो `आपेक्षिक घनत्व` के सिद्धान्त को अपनी आटाचक्की के उदाहरण द्वारा सीखाते हैं और जो कभी कभी चालू क्लास से अपने खेतों में भाग जाते हैं[१], तो रू रूप्पनबाबू जैसे छात्र हैं जिनकी निगाह में इम्तहान में नकल करनेवाला विद्यार्थी और कालेज के प्रिंसिपल एक ही हैं।[२] `वे दिन` का परिवेश योरोपीय है, अत: उसके पात्र चाय-काफी की तरह स्लीवोबित्से, वोड्का, कोन्याक, कियान्ती, शैरी आदि शराब पीते रहते हैं । वहां छात्र तब स्नान करते हैं जब उन्हें उनकी `डेट` के के साथ शाम बितानी होती है । वहां की होस्टल में यह नियम था कि कोई भी छात्र आठ बजे के बाद अपनी प्रेमिका को नहीं ला सकता ।[३] तात्पर्य कि आठ बजे के पहले ला सकता है । भारतीय परिवेश में हम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते । अत: वहां रायना, मारिया, फ्रान्ज़, टी०टी० जैसे पात्र मिल सकते हैं ।

चर्चित उपन्यासों में यह प्राय: देखा गया है कि अल्प वय में यौन-समानता ग्रामीण एवं शहर के पिछड़े व गन्दे तबकों में पायी जाती है । सुश्री गौरी आर० बेनरजी ने अपने अध्ययन में इन तत्वों का सुन्दर विश्लेषण किया है ।[४] `आधा गांव` के सद्दन, कम्मो, मिगदाद आदि में यौनाकर्षण अल्पायु से ही शुरू हो जाता है, यह पहले लक्षित किया जा चुका है । `काला जल` की सल्लो आपा छिप छिप कर अश्लील चित्रोंवाली पुस्तकें पढ़ती रहती है । `सूखता हुआ तालाब` का रवीन्द्र धर्मेन्द्र की बहन का संदेश-वाहक भी है और कभी कभी उसके प्रेमी की `प्रोक्सी` में उसके शरीर की आग भी बुझाता है । उसी उपन्यास में शिवलाल की पुत्री कलावती अपने ही कुल के धर्मेन्द्र मास्टर से उलझी हुई है । `जल टूटता

---

१. `राग दरबारी` : पृ० २९-३० । २. वही : पृ० २३ । ३. `वे दिन` : पृ० २४ ।

४. "Social contact in villages is direct and unconventional, people do not try to retrain from holdingc conversations on sex topics; in the jokes too, the topics of sex plays no small part. Cn the countryside association between boys and girls is much more free then in cities and cases of six offences occur sometimes when they are not well chaparohed."
:Gauri R. Banerjee: Sex Deliquent woman and their rehabilittion: PP.26-27

हुआ ' की पार्वती अपने चमार हलवाहे से फंसी हुई है । ' अलग अलग वैतरणी ' में कल्पू और गोपाल छोटी वय में ही गन्दी यौन आदतों के शिकार हो जाते हैं। उसी उपन्यास में प्रायमरी स्कूल के हेड मास्टर मुंशी जवाहिरलाल अपने छात्र रामचेलवा से पत्नी का काम भी चलाते हैं। ' मुरदा घर ' के गन्या, राजू, गोपू, सोन्या जैसे बच्चे यौन-सम्बन्धी बहुत-सी बातों को (गलत ढंग से ही सही) जानने-समझने लगे हैं। इसके पीछे भी वातावरण ही मुख्य कारण है क्योंकि गांवों में बच्चे प्राय: छुटपन से ही पशु-पक्षियों के यौन सम्बन्धों को देखते हैं। गांव के वयस्क लोगों के नैतिक-अनैतिक शारीरिक प्रेम-व्यापार भी खेतों, जंगलों तथा नदी-नालों में चलते रहते हैं, जो बच्चों की नज़र में पड़ जाते हैं। गांव की बड़ी-बूढ़ी औरतें भी बच्चों के सामने गन्दे मज़ाक करती रहती हैं।[१]

(५) मैत्री या सम्पर्क का प्रभाव : व्यक्ति के चरित्र-निर्माण में मैत्री या सम्पर्क भी एक बहुत बड़ा तत्व है। अंग्रेज़ी की मशहूर कहावत है : Man is known by the company he keeps । हमारे यहां भी संग के रंग का महत्व सर्व-स्वीकृत है। व्यक्ति के चरित्र पर मैत्री से अच्छे-बुरे दोनों प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं।

' पुनर्नवा ' की चन्द्रा में उद्दाम वासनाओं का तूफ़ान मिलता है, किन्तु वही चन्द्रा बाद में मृणाल व सुमेरकाका का संग व स्नेह पाकर सती-साध्वी -सा व्यवहार करने लगती है। जीवन में कई बार किसी का संग नये क्षितिजों का उद्घाटक बन जाता है। संगीत मार्तण्ड पण्डित ओंकारनाथ के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि उनके जीवन में ~~अप्रत्याशित~~ अप्रत्याशित रूप से एक साधु-पुरुष नहीं आये होते तो वे इतने बड़े संगीतकार कभी न बनते। जवाहरसिंह के ' एक टूटा हुआ आदमी का नायक धर्मनाथ यदि ट्रेन में दादाजी (ठाकुर प्रेमेन्द्रकुमार सिंह) को न मिलता तो वह कोम्युनिस्ट विचारधारा की ओर कदाचित् न झुकता।

---

१. "Young girls and boys in villages often develop premature sex interest. The rural environment, both physical and social, conduces to early knowledge of sex, acquired not only from close contact with farm animals and other beasts and birds but also from the talks of elders, specially woman."

:Gauri R. Banerjee. P. 27 Sex Deliquent Woman and their rehabilition P. 27

दादाजी अंग्रेजी और अर्थशास्त्र में एम० ए० थे। कभी प्रो० पी०के० सिंह के नाम से जाने जाते थे, परन्तु मार्क्स पढ़ने के बाद वे लैफ्टिस्ट हो गये और अब उनका कार्य-क्षेत्र कलकत्ता की गन्दी बस्तियां था। इन्हीं दादाजी के साथ धर्मनाथ भी उन बस्तियों में काम शुरू कर देता है। उसके चरित्र में आया हुआ यह परिवर्तन दादाजी की सोहबत का ही परिणाम है। नागार्जुन कृत उमें 'उग्रतारा' की नायिका उग्रतारा उर्फ उगनी विधवा थी, परन्तु उसमें पुनर्विवाह का साहस नर्मदेश्वर की भाभी के सम्पर्क के कारण ही आया था। नर्मदेश्वर की भाभी एक पढ़ी-लिखी प्रगतिशील विचारोंवाली महिला थी। उसने कामेश्वर, नर्मदेश्वर जैसे अनेक युवानों में क्रान्ति की चिनगारी फूंक दी थी। 'छिनाल पुरुषों' के लिए नर्मदेश्वर पिस्तौल के लाइसेन्स की बात चलाता है तब वह कहती है : " पिस्तौल क्या क करोगे ? छिछोर मन का इलाज कारतूस की पेटियों से नहीं होगा। स्त्री-पुरुषों में समान रूप से समझदारी पैदा होगी और मनोरंजन के कई और साधन निकल आएंगे तभी व्यभिचार घटेगा। देहात में खाते-पीते परिवारों के अधेड़ भारी मुसीबत पैदा करते हैं। उगनी जैसी लड़कियों के लिए ज्यादा संकट उन्हीं की तरफ से आता है। दूसरा संकट है डरपोक नवजवानों की छिछली सहानुभूति। इन संकटों का मुकाबला हम पिस्तौल से नहीं कर सकते।"[1] नर्मदेश्वर की इस भाभी की वजह से ही कामेश्वर उगनी के विवशतावश सिपाही भभीखनसिंह का गर्भ ढोने के बावजूद उसे अंगीकृत कर लेता है।

दुश्चरित्र व्यक्ति के सम्पर्क से बुराइयां भी आती हैं। काजल की कोठरी में रहनेवाला लाख जतन करने पर भी बेदाग नहीं रह सकता। चर्चित उपन्यासों में उसके कई उदाहरण मिलते हैं। 'अलग अलग वैतरणी' के गोपाल और कल्पू बुरी सोबत के कारण ही बिगड़ते हैं। बुझारथसिंह के काले कारनामों के पीछे भी खुदाबख्श की सोबत ही मुख्यत: जिम्मेदार है। 'नदी फिर बह चली' का जलाल गांव से शहर कमाने गया है और ड्राइवर बन गया है। शुरू में वह अच्छा था, परन्तु नत्थू तथा गुलाब जैसे दूसरे हमपेशा लोगों के बुरे संग में फंसकर वह शराबी, जुआरी और रण्डीबाज बनकर अन्तोगत्वा अपने साथी का खून भी कर

---

१. 'उग्रतारा' : नागार्जुन : पृ० ३६।

देता है। 'डाक बंगला' की इरा प्रारम्भ में एक सरल-हृदया भावुक मनवाली कुमारिका थी जो विमल को जी-जान से चाहती थी, परन्तु विमल के चले जाने पर वह शनैः शनैः मि० बतरा की गिरफ्त में आ जाती है। उसको अकेलापन और व्याकुलता से उसे सहानुभूति होती है। प्रथम समर्पण में उसे कुछ हिचक और ग्लानि-सी होती है। परन्तु बाद में वह अपने उस बिना 'सामाजिक सनद'[1] के जीवन को सहज रूप में ले लेती है। एक स्थान पर वह तिलक से कहती भी है : "दुनिया के जो भी ऐश और आराम हो सकते हैं, वे मुझे बतरा ने दिये। और अपने मन का चोर बताऊं -- पहले ज्वार के बाद मैं भी चाहने लगी थी कि बतरा के वैभव को मैं क्यों न भोगूं ? उस पर अब मेरा अधिकार था।"[2] बतरा के परिचय ने इरा के जीवन की धुरी को ही घुमा दिया। प्रारम्भ में 'सपनों का राजकुमार' नामक नाटक लिखनेवाली और उसी 'सपनों के राजकुमार' के लिए बेचैन रहनेवाली इरा ही बाद में कहती है : "रास्ते में कोई गन्दी चाय की दूकान आ गयी तो लोग वहां भी रुककर एक प्याली पी लेते हैं, क्योंकि और कोई चारा नहीं है ..."[3] इरा के इस चारित्रिक-पतन के लिए बतरा का संग भी कुछ हद तक जिम्मेदार है।

'छाया मत छूना मन' की कंचन कुसंग में पड़कर 'न्यूड' फोटो खिंचवाकर रूपये कमाती है। इसी के परिणाम स्वरूप वह गुण्डों के गिरोह में फंस जाती है और उसे वेश्यानुमा काम भी करने पड़ते हैं । उनके इशारों से उसे 'ब्लू फिल्मों' में काम भी करना पड़ता है, जिसके कारण बाद में जिन्दगी के संवर जाने पर भी उसे बड़ा नुकसान उठाना पड़ता है।

पुस्तकों का पठन-पाठन भी एक प्रकार की मैत्री ही है। महात्मा गांधी यदि 'अन्टु घ डैथ' और 'डिस आबिडियन्स' न पढ़ते तो उनके मस्तिष्क में कदाचित् सत्याग्रह और असहयोग की बात न आती। 'एक टूटा आदमी' के दादाजी के ~~व्यक्तित्व-निर्माण में~~ व्यक्तित्व-निर्माण' में उनकी लाइब्रेरी का महत्व कम नहीं है। 'उग्रतारा' का कामेश्वर यों ही प्रगतिवादी नहीं हो गया है। पड़ोस के गांव की लाइब्रेरी को वह चाट गया है। 'आर्यावर्त', 'आज',

---

१. 'डाक बंगला' : पृ० ७१। २. वही : ७१। ३. वही : पृ० २७।

'योगी', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'नवनीत', 'सरस्वती', 'नयी धारा', 'किशोर' 'धर्मयुग' आदि पत्र-पत्रिकाओं को वह निरन्तर पढ़ता रहता था, जिससे एक और दुनिया कामेश्वर के भीतर आबाद हो रही थी।[1]

'काला जल' की सल्लो आपा के कारण अन्त के लिए वह अश्लील साहित्य जिम्मेदार है जिसमें गन्दे कामुक चित्र छपे रहते थे और जिसे वह छिप-छिप कर पढ़ती थी। 'टेराकोटा' की मिति रोहित के साथ मिलकर जिस नाटक का रिहर्सल करती है उसका उसके जीवन पर भी काफी प्रभाव देखा जाता है। संक्षेप में मनुष्य के चरित्र-निर्माण में मैत्री या सम्पर्क का भी अपना एक 'रोल' होता है।

(६) विशिष्ट परिस्थितियाँ : कई बार जीवन में ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती हैं जिससे जीवन का रास्ता ही बदल जाता है और व्यक्ति के चरित्र में आमूल परिवर्तन हो जाता है। 'पुनर्नवा' के देवरात पत्नी शर्मिष्ठा की मृत्यु के बाद प्रायः विरक्त-सा जीवन व्यतीत करते हैं। उन पर यदि मंजुला की औरस पुत्री मृणाल का उत्तरदायित्व न आता तो वे कभी संसार की मोहमाया में पुनः लिप्त न होते। 'मछली मरी हुई' के निर्मल पद्मावत को यदि प्रसिद्ध उद्योगपति प्रभासचन्द्र नियोगी का सहयोग प्राप्त न होता तो वह कलकत्ता में कल्याणी मेन्शन जैसे 'स्काई स्क्रैपर' का निर्माण नहीं कर पाता। निर्मल पद्मावत और कल्याणी का अमरीका में मिलना भी आकस्मिक है। भारतीय दूतावास के एक जलसे में कल्याणी निर्मल पद्मावत की बगल में बैठी थी। उसे एक बार देखकर वह भूल नहीं पाया था। फिर एक दिन अचानक 'ब्रॉड वे' के एक थियेटर में अचानक विचित्र परिस्थिति में मुलाकात हो गयी थी, जिसने निर्मल की जिन्दगी के नक्शे को ही बदल दिया।

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'रेखा' की नायिका रेखा यदि अच्छे अंकों से एम० ए० पार्ट-१ में उत्तीर्ण न होती तो न वह डॉ० प्रभाशंकर के निर्देशन में डिजर्टेशन लेती और न उनसे विवाह करती। अपने से दुगुनी आयुवाले प्रौढ़ प्रोफेसर से विवाह करके उसने अपनी जिन्दगी को तल्ख कर दिया। ऐसा अन्य परिस्थितियों में न होता। कमलेश्वर के 'तीसरा आदमी' का नायक यदि

---

१. उजाला : पृ० ३८

यदि इलाहाबाद से दिल्ली आकाशवाणी में न जाता तो उसके जीवन में जो आँधी आयी वह कदाचित् न आती और न उसका व्यक्तित्व उतना कुंठित होता।

(७) मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ : चरित्र-निर्माण के उपर्युक्त तत्वों के अतिरिक्त कतिपय मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ, ग्रन्थियाँ प्रभृति हैं जो चरित्र को बुरी तरह से प्रभावित करती हैं, यहाँ उन पर बहुत संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

(क) अचेतन मन की दमित वासनाएँ : मनुष्य का अचेतन मन चेतन मन से आठ गुना बड़ा होता है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त की अनेक छोटी-बड़ी घटनाओं का प्रभाव उस पर पड़ता ही रहता है। चेतन मन बहुत-सी बातों को विस्मृत कर देता है, किन्तु अचेतन की तहों में तो वे अनेक वर्षों तक पड़ी रहती हैं और व्यक्ति के चरित्र को प्रभावित करती हैं।

चेतन मन बाह्यत: 'इगो' (Ego) और 'इड' (ID) से संचालित होता है। मस्तिष्क का वह भाग जहाँ मनुष्य की प्रारम्भिक इच्छाएँ निवास करती हैं प्राकृतिक स्वत्व 'इड' (It Wants)[१] कहलाता है। 'इड' का सम्बन्ध आनुवंशिकता से है। व्यक्ति के जन्म-जात गुण-दोष का आदि स्रोत 'इड' ही है। परन्तु मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते उसका व्यवहार विवेक-सम्मत होता है। 'इड' की प्राकृतिक इच्छाओं को सभ्यता एवं सांसारिक मान्यताओं और मांगों के अनुसार विवेक द्वारा अनुशासित करनेवाले अंश को 'अहं भाव' - 'इगो' (I will not)[२] कहते हैं। इस प्रकार 'इगो' हमारे व्यक्तित्व का एक चेतन अंश है। 'इड' पर किये जानेवाले सारे नियन्त्रण 'इगो' को ज्ञात रहते हैं, परन्तु कई बार इसके द्वारा नियन्त्रण की क्रिया तो होती है, किन्तु उसका ज्ञान उसे नहीं होता। इस प्रकार 'इगो' से कार्य करानेवाली शक्ति को फ्रायड ने Super Ego (You must not)[३] कहा है।

यही 'इड' और 'इगो' का संघर्ष मनुष्य के भीतर निरन्तर चलता रहता है। दूसरे शब्दों में यही श्रेय और प्रेय या राम-रावण युद्ध है।

१, २ और ३ : Ives Hendrick M.D. : "Facts and Theories of Psychoanalysis" : P. 158.

ऊपर कहा जा चुका है कि 'इगो' द्वारा 'इड' की इच्छाओं का दमन होता है। यही दमित इच्छाएं या वासनाएं अचेतन में संगृहीत होकर मनुष्य के आन्तरिक व्यक्तित्व का निर्देशन करती है। यह दमित वासनाएं, स्वप्न, भूलें, साहित्य और कला तथा अन्य किसी माध्यम से यदि बाहर निष्कासित नहीं होतीं तो मनुष्य के मन में अनेक ग्रन्थियों का जन्म होता है। उसका व्यक्तित्व कुंठित एवं अनेक विकृतियों से ग्रसित हो जाता है।

भगवतीचरण वर्मा कृत 'रेखा' की नायिका रेखा में यौवन-सुलभ काम-भावनाएं हैं, जो अपेक्षाकृत अधिक उम्रवाले डा० प्रभाशंकर से विवाह करने के कारण संतुष्ट नहीं होती। अत: उसके जीवन में एक के बाद एक छ: पुरुष आते हैं -- रामेश्वर दयाल, शशिकान्त, निरंजन कपूर, शिवेन्द्र धीर, मेजर यशवन्तसिंह और डा० योगेन्द्र मिश्र। यहां वर्माजी ने प्रारम्भ में रेखा के 'इगो' और 'इड' का संघर्ष कलात्मक ढंग से चित्रित किया है।[1] उसका 'इगो' उसे सन्तुलित व संयमी जीवन की प्रेरणा देता है तो 'इड' काम-वासना के उद्दाम प्रवाह में खींच ले जाता है।

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा, 'टैराकोटा' की मिति तथा 'छाया मत छूना मन' की वसुधा में भी क्रमश: नील, रोहित व देवेन के लिए 'इगो' और 'इड' का घोर संघर्ष चलता है। इन सभी उपन्यासों में नारी-सुलभ भावनाएं (इड) उन्हें नायकों की ओर उन्मुख करती हैं, परन्तु जीर्ण-मृत:प्राय परिवारों का उत्तरदायित्व नियति ने उनके कंधों पर डाल दिया है जिससे उनका चेतन विवेक रूपी 'इगो' उनकी इच्छाओं का (इड) का दमन कर उन्हें कर्तव्य की ओर ले जाता है। परिणामत: कुण्ठित वसुधा घुट-घुट कर कैन्सर से मर जाती है, सुषमा अपने आगामी कुण्ठित जीवन का संकेत दे देती है। मिति बाहुल्यत: इन तीनों में अधिक सफल व शिक्षित होने के कारण (आई० ए० एस० आफिसर) उच्च ध्येय में स्वयं को डूबो लेती है।

(ख) <u>लिबिडो</u> : फ्रायड के अनुसार मनुष्य की प्रत्येक क्रिया-प्रतिक्रिया काम-भावना से अनुप्रेरित होती है। शैशव काल से ही जातीय वृत्तियों का संचयन होने लगता है। जातीय वृतियों के इस पुंजीभूत रूप को, जो मानव-मस्तिष्क

---

१. 'रेखा' : पृ० ८४ से ८६।

तथा उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को संचालित करती है, फ्रायड ने 'लिबिडो' (Libido) नाम दिया है।[1] लिबिडो की परिधि में नर-नारी लैंगिक आकर्षण को ही नहीं अपितु वात्सल्य, स्नेह, सहानुभूति आदि भावों को भी समाविष्ट किया जाता है। यह शक्ति जीवन में बचपन से ही सक्रिय रहती है। अत: शिशु में जन्म के साथ ही काम-भावना की उत्पत्ति हो जाती है और उसकी पूर्ति के लिए वह साधन भी ढूंढ लेता है। सर्वप्रथम बालक की काम-भावना शरीर के किसी खास स्थान पर नहीं रहती। किन्तु कुछ ही दिनों बाद वह शरीर के विशिष्ट स्थानों में केन्द्रित हो जाती है। फ्रायड ने काम-प्रवृत्ति के विकास को चार अवस्थाओं में विभाजित किया है -- (१) विश्रृंखल, (२) मौखिक, (३) गुदास्थानीय, (४) जननेन्द्रियस्थ। पहली अवस्था में काम-वासना त्वचा पर चारों ओर छितरायी रहती है। किन्तु दूसरी अवस्था में उसका केन्द्र मुख बन जाता है। क्षुधा-तृप्ति के बाद भी स्तन को मुंह में रखना, अंगूठे को चूसना, जिस-तिस चीज़ को मुंह में रखना आदि क्रियाएं उसी काम-वासना की पूर्ति-हेतु है। तृतीय अवस्था में वह मल-निस्सरण क्रिया में आनन्द प्राप्त करता है। अन्तिम अवस्था में वह अपनी ~~जने~~ जननेन्द्रिय में दिलचस्पी लेने लगता है, उससे खेलने लगता है।[2]

इन अवस्थाओं का स्वाभाविक विकास व्यक्तित्व को स्वस्थ और अस्वाभाविक विकास व्यक्तित्व के गठन को अस्वस्थ बना देता है। यह प्राय: देखा गया है कि शैशवावस्था में बालक की काम-शक्ति माता की ओर बालिका की पिता की ओर केन्द्रित होने लगती है। किन्तु लिबिडो की इस भावना को असामाजिक समझकर यदि उनका दमन होता है तो बालक के मन में 'इडिपस ग्रन्थि' (Edipus complex) और बालिका में 'इलेक्ट्रा ग्रन्थि' (Electra complex) का निर्माण होता है।

---

१. "Freud originally gave the term libido to that group of instincts which specially determined the psycho sexual of the individual. Libido is therefore a synomym for sexual instincts." :Ives Handbrick : Facts and theories of ~~sex~~ Psycho analysis: P. 123

२. द्रष्टव्य : डा० धनराज मानधाने : 'हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास' : पृ० ६३-६६४

मनोविश्लेषणवादियों ने लिबिडो (काम-शक्ति) के विभिन्न मोड़ निर्धारित किये हैं : बहिर्मुखीकरण, अन्तर्मुखीकरण, केन्द्रीयण, प्रत्यावर्तन, प्रतिबन्धन और दिशान्तरण । लिबिडो का बाह्य वस्तुओं की ओर आमुख होना बहिर्मुखीकरण तथा आभ्यन्तर दिशा की ओर जाना अन्तर्मुखीकरण है । बालक की अवस्थानुसार लिबिडो का विकास होना चाहिए, किन्तु विशेष कारणों से यदि वह रुक जाता है तो उसे केन्द्रीयण कहते हैं । लिबिडो का विकास किसी कारण से रुककर यदि पीछे की ओर मुड़ जाता है तो उसे प्रत्यावर्तन कहते हैं । अनुचित समझकर चेतन मन लिबिडो की जिस शक्ति को बहिष्कृत कर देता है उसे प्रतिबन्धन कहा जाता है । दिशान्तर में लिबिडो की धारा एक ऐसी दिशा ले लेती है जो सामाजिक दृष्टि से उपयोगी हो और नैतिक भी । इसी के कारण कला और धर्म की उत्पत्ति होती है ।[१]

(ग) अचेतन मन की दमित वासनाओं के प्रमुख निष्कृति-मार्ग :

ऊपर विवेचित हो चुका है कि 'इड' और 'लिबिडो' की बहुत-सी इच्छाएं-वासनाएं समाज एवं सभ्यता द्वारा समर्थित न होने के कारण 'इगो' के द्वारा उनका दमन होता है । ये दमित वासनाएं अचेतन मन में आश्रय पाती हैं । पर मौका पाकर किसी न किसी रूप में बाहर प्रकट होती हैं, जिनमें से कुछ का विवेचन यहां किया जा रहा है ।

दैनिक जीवन की अनेक भूलों (Errors) का मूल उत्स इन दमित वासनाओं में ढूंढा जा सकता है । यदि किसी व्यक्ति से हमें घृणा होती है तो उसके साथ किये जानेवाले व्यवहार में अनजाने ही कोई गलती हम कर बैठते हैं । यह बात चेतन मन के लिए अनजानी होती है, किन्तु अचेतन मन बराबर क्रियान्वित रहता है । 'अन्धेरे बन्द कमरे' का हरबंस अपनी साली शुक्ला को भीतर से चाहता है, और उसी अनुपात में पत्नी नीलिमा को उसका अचेतन मन घृणा करने लगता है । यही कारण है कि शुक्ला की सालगिरह पर वह पत्र भेजना नहीं चूकता जबकि नीलिमा की सालगिरह पर वह समय पर पत्र डालना भूल जाता है । उसी प्रकार रेखा में रेखा द्वारा बाद में डा० प्रभाशंकर की जो अनजाने ही अनेक बार उपेक्षा होती है, उसका कारण भी रेखा के अचेतन मन की उनके प्रति घृणा ही है ।

---

१. द्रष्टव्य : डा० धनराज मानधाने : 'हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास' : पृ० ६४ ।

अचेतन मन ~~की~~ अपनी दबी-दबायी और कुण्ठित इच्छाओं को प्रकट करने के लिए कई बार विस्थापन कार्य-पद्धति (Displacement) का प्रयोग करता है। इसमें आवश्यक विचार अनावश्यक और अनावश्यक विचार आवश्यक लगने लगते हैं। धनाभाव से पीड़ित रहनेवाले व्यक्ति प्राय: धन का अनावश्यक विरोध करते हुए पाए जाते हैं। इसी प्रकार रूपाशक्ति का विरोध करनेवाले बुरी तरह से उसमें लिप्त होते हैं। शिवानी कृत कृष्णकली में कृष्णकली की सहेली विवियन का कज़िन बाबी कृष्णकली पर मुग्ध है। कृष्णकली जिस परिवार में रह रही है, उसमें सुभग व्यक्तित्व का स्वामी प्रवीर भी रहता है। अत: बाबी को उससे सहज ईर्ष्या है। इसलिए वह कृष्णकली से कहता है: "मैं तो कहता हूं कि आप ऐसे नैरो ~~माइन्डो~~ माइण्डेड लोगों के बीच रहिए ही मत मिस मजूमदार।"[1] यहां बाबी के चेतन मन द्वारा 'नैरो माइन्डनेस' का कारण निकलता है, जबकि वास्तविक तथ्य कुछ दूसरा ही है।

'प्रक्षेपण' (Projection) अचेतन मन की एक आत्म-रक्षार्थ क्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने अपराध-भाव को किसी बाह्य विषय पर आरोपित करके ~~स्वयं~~ स्वयं उसके दायित्व से मुक्त हो जाता है। 'अन्धेरे बन्द कमरे' ~~की~~ के हरबंस की निष्क्रियता नीलिमा के असफल नृत्य-प्रदर्शन में कारणभूत है। परन्तु उसका अचेतन मन यह कारण ढूंढ लेता है कि उस असफलता के लिए नीलिमा के नृत्याभ्यास की कमी ही जिम्मेदार है। 'डाक बंगला' की इरा अपनी असफल जिन्दगी के लिए संसार भर के पुरुषों को कोसती है, जबकि उसके पतनोन्मुखी जीवन का मुख्य कारण उसकी स्वयं की प्रकृति भी है। मन्मथनाथ गुप्त के 'शहीद और शोहदे' के शंकरदयाल, देवीचरण, जगदीशप्रसाद और श्रीनागेश जैसे आई० सी० एस० आफिसर लोगों पर नादिरशाही ज़ुल्म गुज़ारते हैं क्यों कि उनकी समझ के अनुसार अंग्रेज़ों के नमक का हक़ इसी प्रकार अदा किया जा सकता ~~है~~ था। शंकरदयाल के ज़ुल्मों के कारण गिरधारी अपनी जान पर खेलकर सिपाहियों की संगीनों पर कूद पड़ता है और मृत:प्राय-सा हो जाता है। इस पर शंकरदयाल अपने मन का समाधान गीता में प्रबोधित ज्ञान के तर्क पर कर लेते हैं।[2]

---

१. 'कृष्णकली': पृ० ११० । २. द्रष्टव्य: "गीता में कहा गया है कि कर्म में ही हमें अधिकार है, फल में नहीं। हमने अपना भरसक प्रयत्न किया, अब कार्य सिद्ध नहीं हुआ, और एक आदमी ने नाहक अपनी जान दे दी, इसमें हमारा क्या हाथ है?": 'शहीद और शोहदे': पृ० २६ ।

'प्रक्षेपण' की भाँति युक्त्याभास (Rationalisation) भी एक आत्म-रक्षार्थ प्रवृत्ति है। इसमें मनुष्य अचेतन रूप से अपने किसी कार्य-विचार का युक्ति-संगत कारण अन्वेषित कर लेता है। इच्छा रहते हुए भी जब किसी वस्तु की प्राप्ति नहीं हो सकती तब यह कहकर संतोष-लाभ किया जाता है कि वह वस्तु ही ही अच्छी नहीं है। 'अंगूर खट्टे हैं' वाली यह प्रवृत्ति व्यक्ति के अचेतन मन को असफलता के दंश से बचा लेती है।

भगवतीचरण वर्मा कृत 'रेखा' उपन्यास में की नायिका रेखा अपने भाई के मित्र सोमेश्वर से जब पहली बार शारीरिक सम्बन्ध बांधती है, तब उसके भीतर एक भीषण द्वन्द्व चलता है। भावना और बुद्धि (इड और इगो) में संघर्ष चलता है। भावना कहती है -- पति के सम्मुख सबकुछ स्वीकार कर लो। परन्तु उसके अचेतन मन में अभी भी सोमेश्वर के लिए आकर्षण था, अत: उसका अचेतन मन 'युक्त्याभास' का सहारा लेता है। वह सोचती है कि अपने इस व्यवहार द्वारा वह डा० प्रभाशंकर के जीवन की शान्ति और विश्वास को एक करारी चोट पहुँचायेगी और उससे उनके जीवन में जो व्यतिक्रम उत्पन्न होगा वह सब- स्वयं उनके लिए ही अहितकर होगा।[१] इसके उपरान्त सोमेश्वर से कभी न मिलने का वह संकल्प कर लेती है, परन्तु दूसरे ही दिन प्रोफेसर को यूनिवर्सिटी पहुंचाकर लौटते समय उसकी कार अचानक सोमेश्वर की होटेल की ओर मुड़ जाती है। उसका अचेतन मन तर्क की इस हिमानी गोद में चरम शान्ति का अनुभव करता है कि वह आज सोमेश्वर से स्पष्टतया कह देगी कि उसे उसके सुखमय पारिवारिक जीवन में व्याघात देने का कोई अधिकार नहीं है। परन्तु होटेल तक पहुंचते-पहुंचते तो उसका अचेतन मन दूसरी तरफ पलट जाता है। उसके 'इगो' (चेतन-मन या विवेक) की पुकार पर अमुक्त काम-वासना हावी हो जाती है और वह काम-दाधा की स्वाभाविक तृप्ति की कायल हो जाती है है।[२]

स्वप्न (Dream): मनोविश्लेषकों के लिए स्वप्न अचेतन मन के अन्धकारपूर्ण गह्वरों में झांकने के लिए 'टार्च' का काम करता है। फ्रायड के अनुसार स्वप्न दमित वासनाओं का

---

१. देखिए : 'रेखा' : पृ० ८६। २. वही : पृ० ८८।

परिणाम है। जागृत अवस्था में चेतन-मन के `सैन्सर` के कारण बहुत-सी इच्छाएँ अमुक्त रह जाती हैं। सुषुप्तावस्था में वे ही दमित अमुक्त वासनाएँ स्वप्न के द्वारा अभिव्यक्ति के मार्ग को अन्वेषित कर लेती हैं।[१] सामान्य भाषा में इच्छा या महत्वाकांक्षा के लिए `स्वप्न` शब्द का प्रचलन है ही। कई बार ये दमित इच्छाएं सीधे-सीधे न आकर स्वप्न-प्रतीकों के माध्यम से आती है। ~~प्र~~ फ्रायड ने ऐसे कई स्वप्न-प्रतीक दिये हैं, जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं : (अ) शिश्न के प्रतीक : पवित्र संख्या तीन, लाठी, चाकू, छुरे, खंजर, तलवार, हथौड़ा, रिवाल्वर, खम्भा, पेड़, छतरी, पैंसिल, झरना, सांप आदि। (ब) योनि के प्रतीक : गड्ढे, खोखल, गुफा, बोतलें, पेटियां, जेब, जहाज, कमरे, मेज, पुस्तकें। (क) अन्य प्रतीक : चिकनी दीवारवाला मकान - पुरुष, छज्जे और जालियोंवाला मकान - स्त्री, छोटे पशु या कीड़े -- भाई-बहन, बहता पानी - जन्म, गाड़ी में सवार होना -- मृत्यु, मिठाइयां -- कामुक आनन्द, सभी प्रकार के खेल - ज्ञानेन्द्रियों द्वारा संतुष्टि, नाचना-सवारी करना, ऊंचाई पर चढ़ना -- मैथुन, जंगली पशु--मनुष्य की उत्तेजित अवस्था। ज्वाला सदा पुरुषेन्द्रिय की प्रतीक होती हैं और अंगीठी स्त्री के गर्भ की। `चढ़ना` मैथुन का प्रतीक इसलिए है कि पशुओं में मैथुन के लिए मादा पशुओं पर चढ़ने की आवश्यकता रहती है।[२]

ऊपर निर्दिष्ट किया जा चुका है कि स्वप्न अमुक्त काम-वासना या इच्छाओं का परिणाम है। इनमें कामेतर दमित इच्छाएं भी सम्मिलित हैं। अतः स्पष्ट है कि स्वप्न मानव-जीवन के व्यापक कार्य-कलापों एवं विविधपक्षीय आशा-आकांक्षाओं एवं भावनाओं के कारण आकार ग्रहण करते हैं। सेक्स पर अधिक बल देने के कारण फ्रायड के सभी स्वप्न-प्रतीक लैंगिक हैं, जबकि जीवन-

---

१. "Dreams are ~~of~~ one of the manifestations of the suppressed material. The suppressed psychic material, which in the waking state has been prevented from expression and out off from internal perceptions.. finds ways and means of obtruding itself on consciousness during the night.":Sigmund Freud: The interpret action of Dream:P.589.

२. विस्तार के लिए देखिए : `हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास` : डॉ० धनराज मानधाने : पृ० ७०-७१।

की व्यापक प्रवृत्तियों की दृष्टि से अन्य स्वप्न प्रतीक भी हो सकते हैं। स्थान घेरने के कारण फ्रायड ने पुस्तक को योनि का प्रतीक बताया है, किन्तु रात-दिन अध्ययन में निमग्न व्यक्ति को यदि स्वप्न में कोई ग्रन्थ दिखायी पड़े तो उसे योनि का प्रतीक कैसे माना जायगा ? इसी प्रकार ऊँचाई पर चढ़ना महत्वाकांक्षा का, गाड़ी का छूट जाना वियोग का, रेजगारी या नोटों का मिलना अर्थाभाव का और ऊँचाई से गिरने का डर ~~अपने-अस्तित्व-इव~~ अपने अस्तित्व की असुरक्षा का प्रतीक हो सकता है। यह हमारे लिए सुखद है कि हिन्दी के उपन्यासों में स्वप्न-विषयक इस व्यापक दृष्टिकोण को अंगीकृत किया गया है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत 'पुनर्नवा' की नायिका मृणाल सदैव अपने पति गोपाल आर्यक के विषय में सोचती रहती है, अत: वह स्वप्न में भी उनकी चिन्ता से ग्रस्त रहती है। वह देखती है कि वे किसी अन्धकार-भरी गुफा में रास्ता खो जाने के कारण व्याकुल भाव से इधर-उधर घूम रहे हैं और मृणाल का नाम ले-लेकर चिल्ला रहे हैं -- "मैना, किधर हो ? दीपक ले आओ, मुझे रास्ता नहीं दिखायी दे रहा है।"[१] उसी प्रकार 'चारु-चन्द्रलेख' में राजा सातवाहन की चेतना पर मैना छायी हुई है, अत: स्वप्न में यह देखने पर कि वह शत्रुओं से में फंस गई है, वे स्वप्न में ही चिल्ला उठते हैं कि "भय नहीं है मैना, मैं आया।"[२] अति-प्रेम में प्रिय जन के सम्बन्ध में शंका-कुशंकाएं उठती रहती हैं और उनकी अभिव्यक्ति स्वप्न के माध्यम से इस प्रकार हो जाती है। यहां मृणाल और सातवाहन के स्वप्नों द्वारा लेखक ने उनके मन के आन्तरिक पक्ष का उद्घाटन कर उनके भीतरी व्यक्तित्व को चित्रित किया है।

'मुरदा घर' का पोपट एक नम्बर का जुआरी है, अत: उसे जो स्वप्न आते हैं, उनका अर्थघटन भी वह आंकड़ों में ही करता है[३]। स्वप्न में भी उसे

---

१. 'पुनर्नवा' : पृ० ११६। २. 'चारु-चन्द्रलेख' : पृ० २२२। ३. द्रष्टव्य : "पीकू उधर एक बाजू से बीस हवलदार आया और दूसरा बाजू से पचीस हवलदार आया। मैं सच्ची बोलता मैना... मैं खुद गिना। बीस और पचीस। दुए से मैंडी... दुए से पंजा। आज लड़ी आना ज मगता। आज मेरा सपना फूटा नई होंगा।" : 'मुरदा घर' : जगदम्बाप्रसाद दीक्षित : पृ० २७।

हाजी सेठ, पुलिस और हवालदार ही आते हैं। रात-दिन वह हवालदारों को सलाम ठोकता रहता है, अतः स्वप्न में हवालदार उसे सलाम मारते हैं।

'अन्धेरे बन्द कमरे' का मधुसूदन एक 'फ्रस्ट्रेटेड' युवक है, अतः बारबार उसे एक स्वप्न आता रहता है। वह स्वयं को एक ऐसी गाड़ी में बैठे हुए पाता है जिसका इंजन पटरी से उतर गया है। उसे आशंका है कि सबकुछ चकनाचूर होगा किन्तु कुछ नहीं होता।[1] यहाँ यह स्वप्न ज़िन्दगी की लक्ष्यहीनता के प्रतीक रूपमें आया है। मधुसूदन का जीवन गाड़ी तथा उसे ढोनेवाली एक सौ साठ रूपये तनख्वाह की नौकरी ही वह इंजन है।

'आपका बण्टी' में बण्टी डा० जोशी को नंगे-बदन देख लेता है, इसकी इतनी बुरी प्रतिक्रिया उस पर होती है कि उसे चारों तरफ़ नंगापन ही नंगापन दिखता है। अतः स्वप्न में भी वही नंगापन सामने आता है: "ढेर ढेर सारे नंगे लोग... बिल्कुल नंग-धड़ंग। आ रहे हैं, जा रहे हैं.... कहीं भी खड़े होकर सू-सू कर रहे हैं। वह भी नंगा होकर घूम रहा है। सू-सू आयी तो वहीं खड़ा-खड़ा करने लगा। सू-सू है कि खतम ही नहीं हो रही है, कितनी ढेर-सारी सू-सू की है उसने।"[2]

लक्ष्मीकान्त वर्मा के उपन्यास 'एक कटी हुई ज़िन्दगी : एक कटा हुआ कागज़' में फ्रायडीय परिभाषावाले अनेक स्वप्न-प्रतीक दीप्ति के स्वप्न में मिलते हैं। दीप्ति आसमान में उगे हुए हाथों को देखती है। हाथ आकार के कारण शिश्न का प्रतीक है। कई हाथों में से वह उस हाथ की ओर बढ़ना चाहती है जो जख्मी है। वह 'केवल' का हाथ है। पति का हाथ होने पर भी वह उसकी ओर जाना नहीं चाहती। किन्तु वह देखती है कि वह 'हाथ' (शिश्न) उसके 'जहाज' (योनि) के पीछे-पीछे 'उड़ता' (सम्भोग करता हुआ) हुआ चला आ रहा है। अन्त में कहीं भाग न सकने के कारण 'खम्भा' (शिश्न) पकड़कर खड़ी होती है। इसके साथ-साथ उसे कुछ चप्पलें (स्त्री जननेन्द्रिय का प्रतीक) तथा नुची हुई साड़ी (नंगापन का प्रतीक) दिखती है।[3] तात्पर्य यह कि दीप्ति के

---

१. 'अन्धेरे बन्द कमरे' : पृ० ३०३। २. 'आपका बण्टी' : पृ० १५१-१५२।
३. 'एक कटी हुई ज़िन्दगी : एक कटा हुआ कागज़' : पृ० १५६-१५७-१५८।

स्वप्न की अधिकांश वस्तुएं उसकी दमित यौन-वासनाओं के प्रतीक-रूप में आयी हैं।

कुछ लोगों को स्वप्न में चलने या बड़बड़ाने की आदत होती है। दिन-भर की सारी बातें वे रात्रि के समय स्वप्न के माध्यम से प्रकट कर देते हैं। हिन्दी उपन्यासों में सम्भवत: ऐसा कोई पात्र अभी तक देखने में आया नहीं है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि इन उपन्यासों में दमित काम-वासना के ही नहीं, अपितु हमारे दैनिक कार्य-कलाप तथा चिन्तन से सम्बन्धित स्वप्न-प्रतीक भी अंकित हुए हैं। उपन्यासकारों ने अन्तर्मन की कलात्मक नियोजना के लिए प्राय: उनका उपयोग किया है।

<u>उदात्तीकरण : (sublimation) :</u> दमित इच्छाएं जब उर्ध्वमुखी होती हैं और और अपनी अभिव्यक्ति के लिए समाजानुमोदित नैतिक आश्रयों को ग्रहण करती हैं, तब उसे उदात्तीकरण कहते हैं। साहित्य, कला, दर्शन आदि इसी उदात्तीकरण के परिणाम हैं।

`पुनर्नवा` के आचार्य देवरात यौधेयकुलभूषण महाप्रतापी क्षत्रिय थे, परन्तु विमाता द्वारा प्राण-प्रिया पत्नी शर्मिष्ठा को सती बना देने के षड-यन्त्र के कारण उद्विग्न होकर भटक जाते हैं। परन्तु अन्ततोगत्वा उनकी यह अभिशप्त इच्छाएं कला, साहित्य व तत्वज्ञान में आश्रय पाती हैं। `प्रेम अपवित्र नदी` का विष्णुपद शैशवकाल में उत्पीड़ित-सा रहता है क्योंकि कपूरवालों की झूठी शान के पीछे उसे मातहीन होना पड़ा था। परन्तु उसकी यही शैशवकालीन दमित इच्छाएं उदात्तीकृत होकर राष्ट्रप्रेम, समाज-सेवा आदि में परिवर्तित हो जाती हैं।

<u>(घ) विभिन्न ग्रन्थियां :</u> उपर्युक्त अचेतन मन की वासनाएं यदि अभिव्यक्ति का कोई स्वस्थ मार्ग प्रशस्त नहीं कर पाती, तब मानव-मस्तिष्क में अनेक ग्रन्थियों का निर्माण होता है, जिनका व्यक्ति के चरित्र-गठन में महत्वपूर्ण योग होता है।

<u>(१) हीनता-ग्रन्थि : (Inferiority Complex) :</u>

ऊपर बताया जा चुका है कि प्रत्येक व्यक्ति के मन में किसी न किसी

प्रकार का अभाव या कमी रहती है। अब व्यक्ति यदि अपनी उस कमी की क्षति-पूर्ति करने में सामर्थ्य प्राप्त कर ले तब तो ठीक है, अन्यथा उसमें हीनता की ग्रन्थि और पकड़ती जाती है। इस ग्रन्थि से पीड़ित व्यक्ति स्वयं को हीन समझने के कारण कुण्ठित व दु:खी रहता है। `आधा गांव` का कम्मो अन्य बच्चों से दूर-दूर भागता है क्योंकि उसका जन्म रहमान-बो से हुआ था जो सैयदानी नहीं थी। दूसरे वह उसके पिता की विवाहित पत्नी न होकर रखैल थी। अत: अपनी जन्म-दाता मां की कलंक-कथा के कारण वह सदैव अपने को हीन समझता रहा। `काला जल` की बी-दारोगिन जब पुन: रज्जूमियां से शादी कर लेती है, तब उसके पुत्र रोशन में हीनता-ग्रन्थि का जन्म होता है। उसी हीनता-ग्रन्थि के कारण वह गुमसुम रहा करता है और उसीके परिणामस्वरूप शनै: शनै: हस्तमैथुन का शिकार हो जाता है।[१] `आपका बण्टी` में शकुन के पुनर्विवाह कर लेने पर बण्टी डा० जोशी के बच्चों के बीच हीनता-बोध का अनुभव करता है क्योंकि प्रत्येक बात में उन बच्चों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। वह हमेशा यही महसूस करता है कि वह दूसरों के घर में आ गया है।

यह ग्रन्थि भी अनेक रूपों में हमारे सामने आती है। तथाकथित उच्च-वर्गीय लोगों में जो वैभव-प्रदर्शन या अंग्रेजी तौर-तरीकों का प्रयोग होता है, वह भी इसी हीनता-ग्रन्थि को द्योतित करता है। डा० राही मासूम रज़ा कृत `दिल एक सादा कागज़` में नारायणगंज की नयी बस्ती जवाहरनगर की महिलाएं जो `बीफ़` खाने की बातें करती हैं, वह उनकी हीनता-ग्रन्थि को सूचित करता है। `बीफ़` पसन्द हो और खाते हो, तब तो ठीक है, लेकिन `बीफ़` यदि इसलिए खाया जाय कि लोग कहीं उन्हें `फ्यूडल` या `कान्जर्वेटिव` न समझें, तो निश्चय ही वह हीनता-ग्रन्थि का परिणाम है। `एकांगी नहीं राधिका ?` में राधिका की भाभी उसे अपने साथ महिला-समाज की बैठकों में इसलिए ले जाती है कि `फारीन रिटर्न` ननद के कारण उसका स्टेटस दूसरों की निगाह में ऊंचा उठता है। हमारे देश में बहुत-से बौद्धिक एवं शिक्षित समझे जानेवाले लोग `फारीन रिटर्न` नाम पर गधे तक की पूजा करने को उद्यत रहते हैं।

`शहर में घूमता आईना` (अश्क) का चेतन जब देखता है कि उससे कम बुद्धि-शक्तिवाले अच्छे और ऊंचे पदों पर पहुंच गये और वह जो उनसे कहीं

---

१. देखिए : `काला जल` : शानी : पृ० ७३।

आगे था, लण्डूरा ही बना रह गया तो उसमें भी हीनता-ग्रन्थि का उदय हुआ ।

'धरती धन न अपना' (जगदीशचन्द्र) में नन्दसिंह चमार का परिवार जब ईसाई हो जाता है तब उसकी पत्नी ठाकरी के व्यवहार में जो परिवर्तन आता है, वह हीनता-ग्रन्थि के कारण है । वह जूता पहनकर अब रसोई में घूमती है क्योंकि पादरी की पत्नी भी वैसा ही करती है । उसकी लड़की पाशो जब काली को हाथ में रोटी देती है तब वह झल्लाते हुए कहती है : "पाशो तू चमारन की चमारन ही रही । तुम्हें अकल नहीं आई । रोटी पिर्च (प्लेट) में रखकर दो ।"[१] तात्पर्य यह कि मनुष्य के चरित्र-निर्माण में इस ग्रन्थि ~~के यत्न~~ का महत्व नगण्य नहीं है ।

क्षति-पूर्ति सिद्धान्त : फ्रायड के अनुगामी एडलर द्वारा प्रस्थापित यह सिद्धान्त हीनता-ग्रन्थि से सम्बद्ध है, जो मानव-चरित्र को समझने में सहायक सिद्ध हो सकता है । संसार में कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं होता, उसमें किसी न किसी प्रकार की आंगिक, क्रियात्मक या मानसिक कमी पायी जाती है । परन्तु उस कमी को दूसरे ढंग से पूरी करने की चेष्टा प्रत्येक प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति करता है । सूरदास व हेलन केलर इसके विश्व-विख्यात उदाहरण हैं । आलोच्य उपन्यासों में भी इसके कई उदाहरण मिलते हैं ।

'मछली मरी हुई' का निर्मल पद्मावत शैशव काल से ही बेघर हो जाता है । घर की इस कमी व बेचारेपन का अहसास उसकी चेतना पर इस कदर हावी हो जाता है कि एक समय वह कलकत्ता का सर्वाधिक सफल व संपन्न व्यापारी बन जाता है । 'आधा गांव' का क़म्मो (कमालुद्दीन) अपनी 'दागी हड्डी' के कलंक को एक सफल हकीम व डाक्टर बनकर धो देता है । 'धरती धन न अपना' के काली में 'पक्के मकान' की वासना का उत्स चमारों के होनेवाले अपमानों में है । 'आधा गांव' का तन्नू सद्दन की तुलना में शारीरिक दृष्टि से कुछ कमजोर व झेंपू प्रकृति का है । अतः सैफुनिया तन्नू की बनिस्बत सद्दन को पसन्द करती है । तन्नू को यह कमी इतनी खल जाती है कि फ़ौज में भर्ती होकर वह एक सफल दिलेर व बहादुर आफिसर बनता है । 'जल टूटता हुआ' का सतीश भी अपनी गरीबी ~~की~~

---

१. 'धरती धन न अपना' : पृ० २२२ ।

व अधिक न पढ़ पाने की वेदना की सम्पूर्ति सरपंच के पद से कर लेता है। राजेन्द्र यादव कृत 'अन देखे अनजाने पुल' की नायिका निन्नी अपनी कुरूपता की पूर्ति पढ़-लिखकर ऊँची कुर्सी की प्राप्ति द्वारा कर लेती है।

(२) श्रेष्ठता-ग्रन्थि : एडलर के क्षति-पूर्ति सिद्धान्त के अनुसार जो लोग अपनी हीनता को पाटने में अति सफल हो जाते हैं, उनमें कई बार यह ग्रन्थि पायी जाती है। अत: यह एक प्रकार से हीनता-ग्रन्थि की ही सम्पूर्ति है। उच्च कुलीन घरानों के गर्भ-श्रीमन्त लोगों में भी यह ग्रन्थि प्राय: मिलती है। इस ग्रन्थि से पीड़ित व्यक्ति स्वयं को अत्यन्त श्रेष्ठ व विशिष्ट समझने लगता है। 'मछली मरी हुई' का निर्मल पद्मावत, 'रुकोगी नहीं राधिका ?' के मनीश, राधिका, डैन आदि : 'टेराकोटा' की मिति : प्रश्न और मरीचिका' का जयराज : 'अलग अलग वैतरणी' का जैपालसिंह आदि पात्रों में यह ग्रन्थि दृष्टिगत होती है जिसे हम पूर्ववर्ती अध्याय में लक्ष्य कर चुके हैं।

(३) बद्धत्व-ग्रन्थि : (Fixation) : कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपनी पिछली अवस्था को समय बीत जाने पर भी नहीं छोड़ना नहीं चाहते। बालक अन-कर विगतावस्था से चिपके रहनेवाली इस प्रवृत्ति को 'बद्धत्व' कहा जाता है। कथा-वस्तु का अनुशीलन करते समय पूर्ववर्ती अध्याय में एतद्विषयक तथ्यों का संकेत दिया गया है। 'मातृ-बद्धत्व' से पीड़ित व्यक्ति अपनी माँ को ही आदर्श स्त्री मानता है और पत्नी से भी वैसी ही अपेक्षाएं रखता है। ऐसे व्यक्ति के लिए गुजराती में 'मावड़िया' शब्द प्रचलित है। 'मत्रो मर जानी' का सरदारी (मित्रो का पति) कुछ-कुछ इसी प्रवृत्ति का है। 'रुकोगी नहीं राधिका ?' की राधिका 'पितृ बद्धत्व' से पीड़ित है, इसलिए उसे अपनी विमाता को कष्ट देने में आनन्द आता है क्योंकि उसके अचेतन मन में कहीं 'सौतिया डाह' पड़ा हुआ है। "रात्रि के समय प्रथम प्रहर में पापा की स्टडी में काम करते हुए राधिका को यह ज्ञान भलीभांति रहता कि विद्या (उसकी विमाता) अपने कमरे में अकेली है। और इससे थोड़ा-सा सुख होता।"[१] डैन के अनुसार राधिका युवा पुरुष को अपरिपक्व इसलिए

---

१. 'रुकोगी नहीं राधिका ?' : उषा प्रियंवदा : पृ० ३५।

समझती है कि प्रत्येक पुरुष में वह अपने पिता की-सी मानसिक प्रौढ़ता ढूंढती है। डैन के साथ उसका फ्री होने का कारण भी यही है कि प्रौढ़ होने के ~~कारण~~ की वजह से उसे अपने पिता का प्रतिबिम्ब उसमें मिलता है।[1] मोहन राकेश के उपन्यास 'अन्तराल' में देव श्यामा को पत्नी रूप में ~~इसलिए~~ इसलिए सुखी नहीं कर पाता कि उसमें अपनी बहन सीमा के लिए बद्धत्व की भावना है। 'सफेद मेमने' की बन्नों में अपने मामा के लिए 'बद्धत्व' भाव है, अत: जब बड़ी ~~उम्रवाले~~ उम्र के मामा जैसे दिखनेवाले रामौतार से उसकी शादी होती है तब उसे प्रसन्नता होती है। 'अन्धेरे बन्द कमरे' की शुक्ला को अपने बहनोई हरबंस का 'फिक्सेशन' है। उसके सम्बन्ध में सुरजीत कहता है कि "हर लिहाज़ से यह उसी को अपना आइडियल मानती है। वह कल को अगर कबूतरों से प्यार करने लगे तो, यह लड़की घर में कबूतर पालने लगेगी।"[2]

आवश्यक नहीं कि यह 'बद्धत्व' किसी व्यक्ति-विशेष के प्रति ही हो। यह किसी विशेष समाज, परिवेश, नगर या देश के प्रति भी हो सकता है। 'अलग अलग वैतरणी' के जमींदार जैपालसिंह का अपने वर्ग तथा उसकी मान्यताओं के प्रति ऐसा 'बद्धत्व' भाव मिलता है। इसीलिए जमींदारी प्रथा तथा उसकी सत्ता के शनै: शनै: समाप्त होते जाने पर उन्हें अत्यन्त मनोवेदना होती है और इसी के परिणामस्वरूप अन्तत: करैता को छोड़कर वे मीरपुर चले जाते हैं। 'आधा गाँव' के हकीम साहब तथा ठाकुर कुंवरपालसिंह, 'जल टूटता हुआ' के महीपसिंह, 'सफेद मेमने' के रामौतार तथा 'दिल एक सादा कागज़' का रफ़्फ़न प्रभृति पात्र ऐसे ही अपने-अपने परिवेश से बद्धत्व भाव द्वारा जुड़े हुए हैं।

(४) इलेक्ट्रा और एडिपस ग्रन्थि: फ्रायड के मतानुसार, जैसा कि पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है, प्रकृत्या ही बालक का माता के प्रति तथा बालिका का पिता के प्रति स्वाभाविक आकर्षण रहता है। परन्तु किसी कारणवश यदि इस भाव को परिवर्तित किया जाता है तब उनमें क्रमश: एडिपस और इलेक्ट्रा ग्रन्थि का निर्माण होता है।

---

१. 'एकाकिनी नहीं राधिका?': पृ० ३४।
२. 'अन्धेरे बन्द कमरे': पृ० ७५।

'मछली मरी हुई' की शीरीं मेहता शैशव काल में अपने पिता के प्रति आकृष्ट थी, परन्तु प्रसूति के दौरान उसकी माता का देहान्त होने पर उसकी बड़ी बहन उसे पिता के विरुद्ध भड़काकर पुरुष-मात्र के प्रति घृणा-भाव पैदा करना चाहती है। इसके फलस्वरूप उसमें 'इलेक्ट्रा ग्रन्थि' का निर्माण होता है जो बाद में उसे असाधारण बना देता है। 'रुकोगी नहीं राधिका ?' की राधिका अपने पिता के साथ 'बद्धत्व' भाव से जुड़ी हुई है। परन्तु उसके पिता जब दूसरा विवाह कर लेते हैं तब उसमें निर्मित 'इलेक्ट्रा ग्रन्थि' उसे पिता के विरुद्ध विद्रोह कराती है। डैन से विवाह-सूत्र में बंधकर उसके साथ विदेश चले जाना उसी की प्रतिक्रिया है। 'आधा गांव' के कम्मो तथा 'काला जल' के रोशन में 'एडिपस ग्रन्थि' मिलती है। 'आपका बण्टी' में उपन्यास के अन्त तक आते-आते बण्टी में इसी 'एडिपस ग्रन्थि' का निर्माण शुरू हो जाता है, क्योंकि शकुन डा० जोशी से विवाह कर लेती है।

(५) सादवादी प्रवृत्ति (Sadism) : सादवादी प्रकृति के लोग दूसरों को पीड़ित करने में आनन्द का अनुभव करते हैं। अत: उन्हें परपीड़क भी माना जाता है। इस प्रवृत्ति से पीड़ित व्यक्ति यौन-क्रियाओं के अन्तर्गत भी प्रतिपक्ष को पीड़ित करने में ~~यौनानन्द का~~ अधिक यौनानन्द का अनुभव करता है। मैथुनिक प्रक्रिया में नर मादा को जितना अधिक कष्ट देता है उतना ही अधिक आनन्द उसे (नर को) प्राप्त होता है। नोंचना, काटना, पिटना, पिन चुभोना आदि क्रियाओं से वह पीड़ा देता है। सादवादी नर को पीड़ा देने और किसी को पीड़ा सहन करते हुए देखने में आनन्द आता है। मैथुनिक ~~प्रक्रिया में~~-- क्रियाओं में नर प्रकृत्या ही थोड़ा पीड़क-प्रवृत्ति का होता है, परन्तु उसकी अति सादवाद कहलाएगी। साधारणत: यह प्रवृत्ति नर में लक्षित की जाती है, ~~पर~~ परन्तु मादाएं भी सादवादी हो सकती हैं। उसे में उन्हें नर को पीडित करने में आनन्दानुभूति होती है। 'सूरज मुखी अन्धेरे के' की रक्तिका (रत्ती) सादवादी प्रवृत्ति की नारी है। पुरुषों को ललचाकर पीड़ित करने में उसे आनन्द आता है क्योंकि अपने शैशव काल में वह एक पुरुष के अत्याचार का भोग बनी थी। रजनी पनीकर कृत 'दूरियां' की चारु यश को प्रेम करती है। उससे यौन सम्बन्ध भी रखती है। यश सेना-सेवा के अन्तर्गत नागालैण्ड जाता है। वहां एक आदिवासी लड़की से वह यौन सम्बन्ध स्थापित कर उससे विवाह कर लेता है। चारु ठगी-सी रह जाती है। इसकी प्रतिक्रिया इतनी भयंकर होती है कि वह 'सेडिस्ट' होकर पुरुषों को तरसाकर

तरसाने में आनन्द का अनुभव करती है : "अपने पास खींचकर छोड़ देने में उसे मज़ा आने लगा था ।"[1] 'मुरदा घर' का जब्बार, 'आधा गाँव' के फुन्नन मियाँ तथा 'काला जल' के रोशन मियाँ आदि स्त्री-पीड़क 'सेडिस्ट' पुरुषों के उदाहरण हैं ।

(६) मासोकवादी प्रवृत्ति (~~Machosism~~ Masochism) : यह सादवाद से विपरीत प्रवृत्ति है । मासोकवादी आत्मपीड़क होते हैं । मैथुनिक क्रियाओं में उन्हें पीड़ित होने में आनन्द आता है । पीड़ा से उनकी यौन-उत्तेजना भड़कने लगती है । गाँवों में बहुत-सी स्त्रियाँ ऐसी पायी जाती हैं जिनकी पिटाई कुछ-कुछ दिनों के अन्तराल से यदि न हो तो उन्हें अच्छा नहीं लगता । पुरुष के उत्पीड़क गुण (दुर्गुण ?) को ही वे उसकी मर्दानगी समझती हैं । 'आधा गाँव' की कुलसुम इसी कोटि में आती है ।

मासोकवादी प्रवृत्तिवालों को यौनेतर क्रियाओं में भी दूसरों द्वारा उत्पीड़ित होने में ही आन्तरिक संतोष होता है । ऐसे लोग सदैव दूसरों का दण्ड भुगतने को तैयार रहते हैं । दूसरों के लिए दु:ख सहन करने में उन्हें आत्मिक सन्तोष होता है । 'छाया मत छूना मन' की वसुधा तथा 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा आदि इसके उदाहरण हैं ।

(च) विभिन्न कुण्ठाएं : दमित वासनाओं के ही कारण व्यक्ति में नाना प्रकार की कुण्ठाएं जन्म लेती हैं । ये कुण्ठाएं मुख्यत: तीन प्रकार की होती हैं : (१) काम-कुण्ठा , (२) अर्थ-कुण्ठा और (३) जातिगत कुण्ठा ।

(१) काम-कुण्ठा : काम-वासना की यदि स्वस्थ ढंग से तृप्ति नहीं होती तो व्यक्ति में काम-जनित कुण्ठाओं का जन्म होता है । 'अलग अलग वैतरणी' की पटनहिया भाभी का पति नपुंसक है, अत: वह प्राय: खेल-खेल में छोटे बच्चों की जननेन्द्रियों को टटोलती रहती है । हृदयेश कृत 'एक कहानी अन्तहीन' की चन्द्रकला का विवाह जल्दी हो नहीं रहा है । अत: वह खिड़की के पास खड़ी रहती है और आते-जाते युवकों से अपने काल्पनिक जिस्मानी रिश्ते जोड़ती रहती है । स्नान के बहाने अपने छोटे भाई की फुन्नी (जननेन्द्रिय) को भी वह छूती है, जिसमें उसे एक काल्पनिक आनन्द आता है । 'अनदेखे अनजान पुल' की निन्नी पुरुष-स्पर्शों को पाने के लिए जान-बूझकर भीड़-भड़क्के वाले

१. 'दूरियाँ' : रजनी पनीकर : पृ. ६२

स्थानों में जाती रहती है।

'अन्तराल' में मोहन राकेश ने जान-बूझकर अनजाने ढंग से दूसरों के शरीर-स्पर्श पाने के इच्छुक लोगों का वर्णन करते हुए लिखा है : "तीन पुरुषों की हल्की उकसाहट वह कई बार महसूस कर चुकी थी। पहला व्यक्ति दायी ओर खड़ा म युवक था जिसे उसने आंखों से डांट देने की कोशिश की। उस पर डांट का थोड़ा असर भी हुआ। पर शेष दोनों व्यक्तियों को आंखों से पकड़ पाना असम्भव था। चेहरे के भाव से वे इस तरह बेलाग नज़र आते थे जैसे कि अपने निचले शरीर से उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है।"[१]

उसी उपन्यास में कुमार जब श्यामा को छोड़कर रिक्शा में वापिस जाने लगता है तब उसे एक झपकी-सी आ जाती है। उसकी बगल में एक पहलवान भी बैठा हुआ है। अचानक वह महसूस करता है कि "जांघों में अटकी हुई टहनी में मोटी-मोटी उंगलियां निकल आयी थीं जो हल्के-हल्के शरीर के उस हिस्से को टटोल रही थी... आखिर उंगलियों का दबाव इतना बढ़ गया कि वह अपने को झटककर जाग गया। शरीर में एक सिहरन दौड़ गयी क्योंकि वह दबाव नींद के खुमार का भुलावा नहीं था। साथ बैठे पहलवान का हाथ उसकी जांघों के बीच आकर उसे मुट्ठी में कसे हुए था।"[२]

(२) अर्थ-कुण्ठा : मध्य-वर्ग या निम्न मध्य-वर्ग में जो प्रदर्शन-वृत्ति मिलती है, उसका उत्स अर्थ-कुण्ठा में ही है। फ्रीज़, डाइनिंग टेबुल, स्कूटर, टी०वी० जैसी कुछ चीज़ें तो 'स्टेटस सिम्बल' होती जा रही हैं। जिनके यहां ये चीज़ें प्रथम बार आती हैं वे घुमा-फिराकर इनकी चर्चा अवश्य कर लेते हैं।

'टूटता हुआ आदमी' (जवाहरसिंह) का धर्मनाथ जब शहर से गांव आता है तब स्टेशन से गांव जाने के लिए घोड़ागाड़ी की तलाश करता है। वैसे गांव अधिक दूर नहीं था और सामान भी ज्यादा नहीं था। वह पैदल भी जा सकता था, पर गांववालों पर अपनी सम्पन्नता व काबिलियत को जमाने के लिए वह घोड़ागाड़ी में जाने की सोचता है। इन पंक्तियों का लेखक भी गांव में रिक्शा एकाधिक बार इसी उद्देश्य से ले गया है।

---

१. 'अन्तराल' : पृ० १०४। २. वही : पृ० ८७।

'दिल एक सादा कागज़' के जवाहरनगर के निवासियों की कृत्रिम व प्रदर्शनमूलक जीवन-प्रणाली के मूल में यही कुण्ठा उपलब्ध होती है। 'अन्धेरे बन्द कमरे' का पत्रकार मधुसूदन जब सुषमा के साथ एक महंगे होटेल में जाता है तब सुषमा को प्रभावित करने के लिए जान-बूझकर कुछ अपरिचित 'डिशों' का आर्डर देता है। 'भीतर का घाव' (डा० देवराज) का नायक कालेज में पढ़ता है। एक-दो लड़कियों के प्रति उसके मन में आकर्षण है। एक बार साहस करके वह उन्हें केन्टिन में ले भी जाता है, पर तब अचानक उसका एक संपन्न मित्र आ जाता है जो 'मेनू' तय करने से लेकर बिल चुकाने तक की बातों में बाज़ी मार ले जाता है और वह खिसियाना-सा देखता रह जाता है क्योंकि आर्थिक पिछड़ेपन ने उसके मन को कुण्ठित कर दिया था।

(३) जातिगत कुण्ठा : निम्न जाति के लोगों में यह कुण्ठा प्राय: मिलती है। उपाध्याय को उपाध्याय या चतुर्वेदी को चतुर्वेदी कहने से उसे अपमान नहीं लगता, पर किसी चमार या हरिजन को चमार या हरिजन कहने से उसे अपमान-सा लगता है। 'धरती धन न अपना' ~~में~~ के काली तथा नन्दसिंह में इसकी तीखी प्रतिक्रिया देखने में आती है। 'चमारा' शब्द उन्हें चाबुक की तरह लगता है। इस अपमान से बचने के लिए नन्दसिंह तो ईसाई तक हो जाता है। वह अपने धर्म-परिवर्तन के कारणों को समझाते हुए काली को कहता है कि सबसे बड़ा फायदा तो यह हुआ कि अब हम चमार नहीं रहे।[१]

नन्दसिंह की पत्नी में तो यह कुण्ठा इतनी बढ़ गयी है कि ईसाई हो जाने के पश्चात् वह स्वयं अपनी मूल जाति (चमार) को हीन दृष्टि से देखती है। हिन्दुस्तान में अधिकांश लोग स्वयं को अंग्रेज़ों या विदेशियों से हीन समझते हैं। अत: उनके वाणी-व्यवहार से अंग्रेज़ीयत टपकती है। इसमें भी जातिगत कुण्ठा काम करती है। हम प्राय: मज़ाक में कहा ~~कह~~ करते हैं कि अंग्रेज़ यदि चाय या काफी चम्मच से पीते तो हमारे बहुत से हिन्दुस्तानी आज भी चाय उसी प्रकार से पीते।

जाति को विस्तृत सन्दर्भों में भी ~~यह~~ यदि लिया जाय तो वर्ग-विशेष के लिए भी इसका प्रयोग हो सकता है। बदी उज्ज़मां कृत 'एक चूहे की

---

१. 'धरती धन अपना' : पृ० २३१।

मौत ' में क्लर्क-बिरादरी की विभिन्न कुण्ठाओं को लेखक ने व्यंजित किया है। उसमें यह बताया गया है कि कोई छोटा चूहेमार ' (क्लर्क) यदि ' बड़ा चूहेमार ' (आफिसर) हो जाता है तो कानूनन तो वह बड़ा चूहेमार हो जाता है, पर बड़े चूहेमारों के वर्ग में उसे हेय नज़रों से देखा जाता है क्योंकि ज़िन्दगीभर छोटा चूहेमार रहने से उसमें उस वर्ग की तमाम कुण्ठाएं मिलती हैं।

(छ) यौन-विकृतियाँ : आलोच्य उपन्यासों की पात्र-सृष्टि में यौन-विकृतियों से पीड़ित कई पात्र मिलते हैं। इन यौन-विकृतियों का भी व्यक्ति के चरित्र-गठन में बड़ा महत्व है। पूर्व-निर्दिष्ट काम-कुण्ठाजन्य क्रियाओं को भी यौन-विकृतियां ही कहा जायगा, परन्तु यहां चर्चित उपन्यासों में पायी गयी कुछ विशिष्ट यौन-विकृतियों को लक्ष्य किया जा रहा है, जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं : (१) समलैंगिकता , (२) हस्तमैथुन , (३) पुशु पशु-मैथुन।

(१) समलैंगिकता (Homosexuality) : विश्व के बहुत से नामांकित व्यक्ति इस विकृति से पीड़ित मिलते हैं। यहां डा० धनराज मानधाने का यह कथन ध्यातव्य है : ' बहुत-सी असभ्य एवं बर्बर जातियों में समलैंगिक व्यभिचार श्रद्धा की दृष्टि से देखा गया है। मिश्रवासी अपने पूज्य देवताओं ' होरस ' और ' सेत ' को समलैंगिक मैथुनकारी बताते हैं। यूनानी लोगों ने तो सैनिक गुणों के लिए इसे आदर्श माना था। ' क्लीओपैट्रा ' में सिज़र को युवावस्था में अपने नेता के साथ समलैंगिक सम्बन्ध को स्थापित करते हुए बतलाया है। दान्ते का गुरु लातिनी, सुप्रसिद्ध मानतावादी म्यूरे, मूर्तिकार माइकेल एंजलो, कवि मार्लो तथा बेकन जैसे महान व्यक्ति भी यौन-विपरीतता के शिकार थे। यौन विपरीतता साहित्यिक, अभिनेता, संगीतज्ञ, बाल संवारनेवाले, होटल के बेयरे, तथा चर्च के फादर्स में विशेष रूप से पायी जाती है।'[१]

स्त्री-पुरुष का मैथुनिक सम्बन्ध स्वाभाविक व साधारण है, किन्तु इससे विपरीत अवस्था में उसे समलैंगिक विकृति ही माना जायगा। जब दो स्त्रियों के बीच ऐसे सम्बन्ध होते हैं, तो उसे ' लिस्बियां ' कहा जाता है। राज

---

१. ' हिन्दी मनोवैज्ञानिक उपन्यास ' : पृ० ८७।

कमल चौधरी का 'मछली मरी हुई' उपन्यास भी लिस्बियन स्त्रियों को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। पिछले अध्याय में इस उपन्यास की शीरी और उसकी बहन तथा शीरी और प्रिया के एतद्विषयक सम्बन्धों को निर्दिष्ट किया जा चुका है। लिस्बियन औरतें प्रायः ठण्डी होती हैं। 'सफेद मेमने' की बन्नो के ठण्डेपन का का कारण उसकी लिस्बियन मामी का सम्पर्क भी है।

पुरुषों में यह समलैंगिकता दो प्रकार की मिलती है। प्रथम प्रकार के अन्तर्गत वे लोग आते हैं जो स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की पूर्तिहेतु इसे अपनाते हैं। इसमें दोनों पुरुष एक-दूसरे के शिश्नों को परस्पर रगड़ते हैं। 'अलग अलग वैतरणी' का मास्टर जवाहरसिंह अपने शिष्य रामचेलवा को अपने साथ सुलाता है। इस प्रकार शिष्य मास्टर साहब की सेवा के साथ उनका बिस्तर भी गर्म करता है।

दूसरे प्रकार की विकृति प्रायः नवाबी सभ्यता की देन है जिसे लौंडेबाज़ी कहा जाता है। इसमें खूबसूरत लड़कों के साथ गुदामार्गीय मैथुन किया जाता है। डा० राही मासूम रज़ा के उपन्यास 'आधा गांव' में सलीमपुर के जमींदार अशरफुल्ला खां 'अशरफु' अपने दादा के कलमी (हाथ के लिखे हुए) दीवान के साथ एक नमकीन लौंडे को भी रखे हुए थे और फुरसत में इन दोनों ही के पन्ने उल्टा-पल्टा करते थे।[1] इसी उपन्यास में ही तक्कन चाचा कम्मो को गोदाम में ले जाते हैं। तक्कन चाचा और कम्मो के ऐसे सम्बन्धों का बड़ा ही कुप्रभाव कम्मो के चरित्र पर पड़ता है। रज़ा के 'दिल एक सादा कागज़' में तो ऐसे अनेक पात्र मिलते हैं। नारायणगंज की 'स्कूल पालिटिक्स' में इस लौंडेबाज़ी का भी महत्वपूर्ण रोल है।

(२) हस्त मैथुन : माँ-बाप के प्रेम से वंचित रहनेवाले या भय-त्रस्त वातावरण में पलनेवाले एकान्त-प्रिय बच्चों तथा किशोर-किशोरियों में यह विकृति प्रायः मिलती है। बड़ी उम्र के उन स्त्री-पुरुषों में भी यह प्रवृति मिलती है जिनकी शादी नहीं होती, जो विधुर होते हैं या जिनको विवाह के बाद भी दीर्घ समय के लिए अलग रहना पड़ता है।

---

१. 'आधा गांव' : पृ० ६१।

'आपका बण्टी' का बण्टी स्नान करते समय अपने शिश्न को हाथ से तौलता है। यह इस प्रवृत्ति का प्रारम्भ है। एक कहानी अन्तहीन में गोविन्दराम की पत्नी मैके गयी है, अत: वह अपनी यौन-क्षुधा की तृप्ति हस्त-मैथुन द्वारा कर लेता है।[1] 'अलग अलग वैतरणी' के गोपाल और कल्पू भी इसी आदत के शिकार हैं। 'काला जल' का रोशन मां (बी-दारोगिन) के दूसरे विवाह से अप्रसन्न व लज्जित है। अत: वह सबसे कटा-कटा रहता है। परिणामत: उसमें यह आदत पड़ने लगती है।

(३) **पशु-मैथुन :** यह वृत्ति उच्च-वर्ग की यौन-वासना पीड़ित अविवाहित नारियों में तथा ग्रामांचलों में कई बार कुछ पुरुषों में पायी जाती है। कुत्ते या बिल्ली को साथ लेकर सो जाना भी इसी के अन्तर्गत आ जाता है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की संस्कृत की व्याख्याता मिस शास्त्री में अपनी बिल्ली को लेकर इस प्रवृत्ति का संकेत मिलता है। 'सफेद मेमने' का ढोरों का डाक्टर भानमल गर्मायी हुई भैंस के साथ मैथुन करते हुए भीमा द्वारा पकड़ा जाता है। भानमल राजस्थान के एक दूरवर्ती गांव में अकेला रहता है। स्त्रियों के नाम पर सम्पर्क केवल पोस्टमास्टर की पत्नी बन्नो से है जिसे संकोचवश वह कुछ कह नहीं सकता। अत: वह मस-उठी भैंस की विह्वलता को जब देखता है, तब उत्तेजित हो अपनी यौन-क्षुधा की तृप्ति उससे कर लेता है।[2]

(ज) **नपुंसकता :** नपुंसकता का मनुष्य के व्यक्तित्व पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। यह नपुंसकता या हिजड़ापन भी दो प्रकार का होता है। प्रथम प्रकार में पुरुष का केवल बाह्य व्यक्तित्व स्त्रीत्वपूर्ण होता है, पर उसमें मैथुन-सामर्थ्य होता है। 'जल टूटता हुआ' का दलसिंगार इसका एक अच्छा उदाहरण है। वह 'मगुआ' है, फिर भी

---

१. देखिए : "वह तकिए को भींचता। अपना पैर चारपाई पर कसता। कभी चित होता, कभी पट। उसकी छटपटाहट जलती रेत पर पड़ी मछली जैसी थी। जब उसने हाथ का सहारा लेकर उस उबलते लावा को बाहर उलीच दिया, तभी वह सो सका था।" : एक कहानी अन्तहीन' : मृ० हृदयेश : पृ० ७८।

२. 'सफेद मेमने' : मणिमधुकर : पृ० ५०-५१।

डलवा से उसके शारीरिक सम्बन्ध चलते हैं। दूसरे प्रकार में वे पुरुष आते हैं जो बाह्यतः पुरुष-से दिखते हैं, पर उनमें पुरुषत्व (सम्भोग-शक्ति) नहीं होता। भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'रेखा' का चित्रकार शिवेन्द्र धीर बड़े आकर्षक व्यक्तित्व का स्वामी है। स्त्रियां उसकी तरफ खींच-खींच जाती हैं। डा० योगेन्द्रनाथ के शब्दों में : 'प्रेम प्राप्त करने के मामले में शिवेन्द्र हमेशा से बड़ा भाग्यशाली रहा है।... युवतियां इस आदमी के इर्द-गिर्द मंडराया करती हैं, और यह उन युवतियों से जो चाहे करा सकता है।... हां, वह बाद में इससे घृणा अवश्य करने लगी हैं।'[१]

इस प्रकार का नपुंसकत्व भी दो प्रकार का होता है -- प्राकृतिक व मानसिक। प्राकृतिक नपुंसकत्ववालों में जननेन्द्रिय अति अविकसित अवस्था में होती है। बिहार के मैथिल ब्राह्मणों में विवाह के पूर्व जो महीन धोती बदलायी जाती है, कदाचित् उसका प्रयोजन इस बात का परीक्षण ही होगा। 'रेखा' का शिवेन्द्र धीर तथा 'पुनर्नवा' का चन्द्रा का पति इस कोटि में आते हैं। मानसिक नपुंसकत्व में नपुंसकता मनोवैज्ञानिक कारणों से होती है। काम-वैज्ञानिकों के अनुसार निन्यानबे प्रतिशत नपुंसक नपुंसक होते ही नहीं है, किन्तु जातीय अज्ञान एवं भय के कारण उन्हें ऐसा महसूस होता है।[२] कई बार एक पुरुष जो अपनी पत्नी के साथ नपुंसकत्व का अनुभव करता है, किसी अन्य स्त्री के साथ सफलतापूर्वक सम्भोग-निर्वाह कर सकता है। 'रेखा' के डा० प्रभाशंकर ने प्रौढ़ वय में रेखा से विवाह किया था, अतः वे मानसिक रूप से ही यह समझने लगते हैं कि वे रेखा को संतुष्ट नहीं कर सकेंगे। यह डर ही उन्हें नपुंसक बना देता है। जबकि दूसरी ओर मिसेज़ चावला (उनकी समवयस्का) के साथ वैसा अनुभव नहीं करते। स्त्री यदि समझदारी से काम ले तो पुरुष का मानसिक नपुंसकत्व दूर हो सकता है। योरोप में तो कुछ स्त्रियों का व्यवसाय ही मानसिक नपुंसकों के नपुंसकत्व को दूर करना है। मनोविश्लेषकों के मार्गदर्शन में वे ऐसे पुरुषों में पुनः पौरुष का संचार करती हैं।

'मछली मरी हुई' का निर्मल पद्मावत प्रकृत्या नपुंसक नहीं है। परन्तु कल्याणी के साथ प्रथम सम्भोग के क्षणों में कल्याणी की फटकार उसे नपुंसक बना देती है। अतः कल्याणी ही उसे पुनः मर्द बना सकती थी, परन्तु

३०१।

१. 'रेखा' : पृ० ३७३। २. 'दाम्पत्य रहस्य' : डा० हरकिशनदास गांधी : पृ० ^

उसकी मृत्यु हो जाती है। अत: कल्याणी की पुत्री प्रिया , जो देखने में कल्याणी-सी ही है, के द्वारा ही अन्तत: उसकी वह कमी दूर होती है।

उपर्युक्त तथ्यों के समग्रावलोकन से कहा जा सकता है कि व्यक्ति के चरित्र-गठन में वैयक्तिक व सामाजिक, बाह्य व आन्तरिक ऐसे अनेक तत्व हैं , जिन्हें विश्लेषित किए बिना चरित्र की परि-कल्पना को समझ पाना अत्यन्त कठिन है।

चरित्र-सृष्टि की विभिन्न पद्धतियां तथा उनमें सहायक तत्व

पूर्ववर्ती विवेचन में चरित्रांकन की विभिन्न पद्धतियों या विधियों को निर्दिष्ट किया जा चुका है। अत: यहां संक्षेप में उनका उल्लेख कर चर्चित उपन्यासों से कुछ उदाहरण लेकर उन्हें स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है। उपन्यासकार अपनी चरित्र-सृष्टि को दो प्रकार से प्रस्तुत करता है : (१) प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक विधि और (२) अप्रत्यक्ष या नाटकीय विधि।

प्रत्यक्ष विधि में उपन्यासकार स्वयं पात्र के बाहरी व्यक्तित्व एवं आन्तरिक गुणों को विश्लेषित करता है। लेखक अपने मस्तिष्क में अवस्थित पात्र-परिकल्पना को ~~इस विधि द्वारा कई-बार~~ उसके मूल बिम्बात्मक स्वरूप में पाठक तक सम्प्रेषित करने में कई बार इस विधि का उपयोग करता है। पात्रों का बाह्य व्यक्तित्व प्राय: देशकाल सापेक्ष होता है।यह पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि पात्र के बाह्य व्यक्तित्व में उसका आकार-प्रकार, वर्ण, चाल-ढाल, बोली, आदतें, तकिया कलाम प्रभृति को परिगणित किया जाता है। अध्याय के आरम्भ में पात्र की व्यक्तिगत-विशेषता के सन्दर्भ में चर्चित उपन्यासों से कुछ उदाहरण दिये गये हैं। अत: यहां आलोच्य उपन्यासों ~~के~~ में प्राप्त होनेवाले प्रत्यक्ष विधि के कतिपय रूपों को क्रमश: प्रस्तुत किया जा रहा है ।

(१) " उसका कद लम्बा था, शरीर गौर वर्ण था और पहनावे में कौशेय उत्तरीय और कौशेय अधोवस्त्र भी थे। इस आदमी को फूलों का शौक जान पड़ता था। शिखा में, गले में और बाहुमूल में उसने मालती की माला धारण कर रखी थी। उसके हाथ में एक वेत्रयष्टि थी, जो किसी समय निश्चित ही सुरुचिपूर्ण

रही होगी, परन्तु अब धूलि-धूसर हो गयी थी। उत्तरीय को उसने बड़ी रूचि के साथ चुन्नट देकर सजाया था।... उसका ललाट प्रशस्त था, आँखें हरिण की आँखों की तरह मनोहर थीं, कान लम्बे और नाक किंचित शुक-तुण्ड की तरह से आगे की ओर फुकी हुई थी।'[1]

(२) 'वह गले में पहाड़ी मंगलसूत्र पहनती, पर हाथ की चूड़ियों के बीच रहती शंख की चूड़ी और 'नोआ'। पैरों में बिछुए रहते पर माँग में रहती प्रगाढ़ सिन्दूर की रेखा। सीधे पल्ले की साड़ी के अंचल में झूलता बंगाल की गिन्नी का-सा चाबी का गुच्छा। हिन्दी बोलती तो लगता कोई बंगाली महिला हिन्दी बोल रही है।'[2]

(३) 'एक दुबला-पतला आदमी गन्दी ~~का~~ बनियाइन और धारीदार अण्डरवियर पहने बैठा था। नवम्बर का महीना था और शाम को काफी ठण्डक हो चली थी, पर वह बनियाइन में काफी खुश नज़र आ रहा था। उसका नाम मंगल था, पर लोग उसे सनीचर कहते थे। उसके बाल पकने लगे थे और आगे के दांत गिर गये थे। उसका पैशा वैद्यजी की बैठक में पर बैठे रहना था। उसे आज बनियाइन पहने हुए देखकर रूप्पनबाबू समझ गये कि सनीचर 'फार्मल' होना ~~का~~ चाहता है।'[3]

(४) 'प्रोफेसर की उम्र बत्तीस-पैंतीस साल की होगी और भारतीय विश्वविद्यालयों के पैमाने से वह बहुत जल्दी प्रोफेसर बन गया था। उसने हार्वर्ड में समाज-शास्त्र का अध्ययन किया था और बातचीत के अमरीकी लहजे में वह अपने गहरे अध्ययन को आसानी से छिपा सकता था। 'श्योर', फाइन'' ओके' की बौछार, कुछ ज़्यादा शोख कपड़े, एक खास लय के साथ बोली जानेवाली अंग्रेज़ी -- इन सब कारणों से, और खेलकूद की दुनिया में कई सालों तक बिताये हुए, गठे हुए जिस्म से सचमुच ही वह प्रोफेसर की भारतीय कल्पना के बहुत खिलाफ़ जाता था।'[4]

उपर्युक्त उदाहरणों में से प्रथम में लेखक ने चौथी शताब्दी के एक कवि-व्यक्तित्व का शब्द-चित्र आलेखित किया है। पहिनावा, पसन्द तथा लेखक द्वारा प्रयुक्त भाषा-शैली तीनों से उसका तत्कालीन व्यक्तित्व झलकता है।

---

१. 'पुनर्नवा' : पृ० ६५। २. 'कृष्णकली' : पृ० ७७। ३. 'राग दरबारी' : पृ० ३८। ४. 'सीमाएं टूटती हैं' : पृ० १७०।

दूसरे उदाहरण में कुमाऊँ जैसे पर्वतीय प्रदेश की गृहस्वामिनी पर सुदीर्घ निवास के कारण पड़े बंगला संस्कृति के प्रभाव को लेखिका ने बखूबी निर्दिष्ट किया है। तीसरे उदाहरण में गांव के एक सामान्य व्यक्ति के चित्र को लेखक ने उद्घाटित किया है। आज भी गांवों में ऐसे बहुत से लोग मिलेंगे जिनकी आम पोशाक महज़ धारीदार अण्डरवियर होती है। थोड़े 'फार्मल' होने पर वे बनियायन पहन लेते हैं। पाजामा या धोती वे तभी पहनते हैं जब बाहर जाना होता है। चौथे उदाहरण में जहां एक तरफ़ हार्वर्ड-शिक्षित एक 'यंग प्रोफ़ेसर' का चित्र अंकित हुआ है, वहां दूसरी तरफ़ से प्रकारान्तर से भारतीय कल्पना के 'टायपिकल' प्रोफ़ेसर के चित्र को भी उभार संकेतित किया गया है।

उपरिनिर्दिष्ट उदाहरणों में बाह्य-व्यक्तित्व के निरूपण में मूर्त उपादानों का आश्रय लिया गया है, पर कई बार एतदर्थ अमूर्त साधनों का प्रयोग भी होता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत 'चारु-चन्द्रलेख' में चारुनटी के नृत्यांगना व्यक्तित्व का बड़ा काव्यात्मक अंकन अमूर्त उपादानों द्वारा संपन्न हुआ है: "उनका सारा शरीर छन्दों से बना जान पड़ता है था। मानो अनुप्रासों से कसकर, संगीत में ढालकर, यमकों से संवारकर, उपमानों से निखारकर, तालों से बांधकर, यतियों से शासित कर इस मनोरम आकर्षक शरीर को स्वयं छन्दोदेवता ने बनाया हो।"[१] नृत्यांगना चारुनटी का उक्त चित्र बोध-गम्य न होते हुए भी हमारे मानस पर एक प्रभाव अंकित करने में सफल होता है। कविता के सन्दर्भ में इसे ही मानस-बिम्ब कहा जाता है।[२]

उपर्युक्त उदाहरणों में बाह्य-व्यक्तित्व का निरूपण हुआ है। परन्तु कई बार उपन्यासकार व्यक्ति के आन्तरिक गुणों के उद्बोधन के लिए भी इस प्रत्यक्ष विधि का प्रयोग करता है। यहां कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं:

(१) "कालिकाप्रसाद का पेशा सरकारी ग्रान्ट और कर्ज खाना था। वे सरकारी पैसे के द्वारा सरकारी पैसे के लिए जीते थे। इस पेशे में उनके

---

१. 'चारु-चन्द्रलेख' : पृ० १५५।

२. 'देखिए : 'काव्य-मनीषा' : डा० भगीरथ मिश्र : पृ० २६४-२६६।

तीन सहायक थे -- क्षेत्रीय एम० एल० ए०, खद्दर की पोशाक और उनका यह वाक्य, 'अभी तो वसूली की बात ही न कीजिए । आपको कारवाई रोकने में दिक्कत न हो, इसलिए मैंने ऊपर की दरख्वास्त लगा दी है ।' अपने हिसाब से वे गांव के सबसे ज़्यादा आधुनिक आदमी थे, क्योंकि उनका यह पेशा बिलकुल ही आधुनिक काल की उपज था ।... उनका ज्ञान विशद था । ग्रान्ट या कर्ज़ देनेवाली किसी नयी स्कीम के बारे में योजना आयोग के सोचने-भर की देर थी, वे उसके बारे में सबकुछ जान जाते थे । अपने देहाती सलीके के बावजूद, वे उन व्यापारियों से ज़्यादा चतुर थे जो नया बजट बनने के पहिले ही टैक्स के प्रस्तावों की जानकारी पा जाते हैं ।'[1]

(२) 'रामकुमार गोरखपुर बी०ए० में पढ़ता है, वह कब शुरू में कांग्रेस का सदस्य रहा, फिर इच्छा हुई तो ~~कम्म्य~~ कम्युनिस्ट बन गया । उसने मार्क्सवाद का थोड़ा अध्ययन किया, फिर उसे बहस करने की आदत-सी पड़ गयी, हर छोटे-बड़े मौके पर वह बहस का रंग हाथ से न जाने देता । गांव के लोग उसे ~~अपार्थिव समझते, पर~~ अधम--- अधार्मिक समझते, पर रामकुमार यही मानकर हंस देता कि ये सब अभी जमाने से बहुत पीछे हैं ।'[2]

उपर्युक्त उदाहरणों में प्रथम तो आधुनिक काल के नेतानुमा चलतेपुर्जे आदमी के व्यक्तित्व को उद्घाटित किया गया है । आज़ादी के बाद इस वर्ग के लोगों की एक जमात-सी हो गयी है । सरकार रूपी भैंस को कैसे दूहा जा सकता है, इस कला में वे अत्यधिक माहिर होते हैं । कालिकाप्रसाद के व्यक्तित्व में वे सब विशेषताएं मौजूद हैं जो इस प्रकार के व्यक्ति में होनी चाहिए । दूसरे में लेखक ने शहर में रहकर पढ़नेवाले ग्रामांचलीय ~~अपरिपक्व~~ अपरिपक्व, अहम्मन्यतापूर्ण किताबी दिमागवाले युवक का बड़ा ही सटीक वर्णन किया है । इसी प्रकार 'शहीद और शोहदे' उपन्यास में पुराने आई०सी०एस० शंकरदयाल का बड़ा ही स्वाभाविक निरूपण हुआ है ।[3]

इस विधि से चरित्रों के जो रूप उजागर होते हैं वे चरित्र-सृष्टि में प्रधान नहीं कहे जा सकते, तथापि यह विधि चरित्रों का बाह्य रूप-रंग अंकित करने में ~~अ~~ सहायक होती है ।

---

१. 'राग दरबारी' : पृ० १६१-१६२ । २. 'जल टूटता हुआ' : पृ० ४४ ।
३. देखिए : 'शहीद और शोहदा' : पृ० १२ ।

अप्रत्यक्ष या नाटकीय विधि : अप्रत्यक्ष या नाटकीय विधि मैं पात्र का चरित्रांकन उसके कार्य-कलाप, उसके तथा अन्य पात्रों के कथोपकथन, स्वगत-कथन, अन्तर्द्वन्द्व आदि उपादानों का आश्रय लेकर किया जाता है। कार्य-कलापों का क्षेत्र विस्तृत है जिसमें रुचि-अभिरुचि, सामान्य और विशेष परिस्थितियों के व्यवहार, पत्र, दिवा-स्वप्न आदि आ जाते हैं।

व्यक्ति के चरित्र का वास्तविक मानदण्ड उसके कार्य ही हैं। 'जल टूटता हुआ' के सतीश, रामकुमार, महीपसिंह प्रभृति पात्र अपने कार्यों द्वारा ही एक-दूसरे से अलग पड़ते हैं। सतीश धैर्यशील, विचारक व उदारमना व्यक्ति है। रामकुमार किताबी सिद्धान्तवाला, स्वार्थी व प्रपंची मनोवृत्तिका है। महीपसिंह में जमींदारी की अकड़ व झूठा अभिमान है। 'अलग-अलग वैतरणी' के विपिन-बाबू व बुझारथसिंह भी अपने कार्यों द्वारा ही अपने चरित्र की छाप छोड़ते हुए दृष्टिगत होते हैं। उसी प्रकार 'आधा गांव' के फुन्ननमियां, मिगदाद, सद्दन, कम्मो : 'काला जल' के रज्जू मियां, बी दारोगिन, नायडु : 'धरती धन न अपना' के काली, नन्दसिंह, चाची, ज्ञानो आदि : 'सूखता हुआ तालाब' के देवप्रकाश, रवीन्द्र, शिवलाल, शामदेव, मोतीलाल आदि पात्र भी अपने कार्यों द्वारा पाठकों के मानस-पटल पर अपना व्यक्तित्व अंकित करते हैं। पड़ोसी के घर से उसकी पत्नी उठा लाना और फिर नित्य ही उसके साथ बैठकर हुक्का पीना यह फुन्नन-मियां जैसे जीवट वाले व्यक्ति ही कर सकते हैं। उपन्यास के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक फुन्ननमियां की जीवट के अनेक प्रसंग आते हैं। थाना के दारोगा को नाकों दम कर रखना तथा भरी महफिल में नवाब के खास चहेते लौंडे को तमाचा मार देना कोई सरल बात नहीं है। मरते समय भी उसके मुंह से मर्दानी बात ही निकलती है। छिकुरिया और फुन्ननमियां रात्रि के घोर सन्नाटे में ठाकुर साहब के गांव से अपने गांव जा रहे थे कि उन पर अचानक लाठियों का मेह बरसने लगा : 'ई त बड़ी नामर्दी की बात है। उन्होंने गिरते-गिरते कहा, 'टोक के मारा त मरद जानें।' लाठी उनके कन्धे पर पड़ी, 'हट जनखे।' उन्होंने बड़ी हिकारत से कहा। फिर रात जैसे उनकी आंखों में घुस गयी और फिर रात उनके खून में मिल गयी और फिर वह खुद रात का एक हिस्सा बन गये।'[1] इसी प्रकार

---

1. 'आधा गांव' : पृ० ३५६।

'सूखता हुआ तालाब' के मोतीलाल का दोगलापन और कायरता उसके कार्यों में व्यंजित हुए हैं।

कई बार पात्र स्वयं अपने चरित्र पर प्रकाश डालता है। 'अन्तराल' उपन्यास की श्यामा एक दोहरी मन:स्थिति में जी रही है। कुमार के प्रति उसके मन में एक सूक्ष्म आकर्षण है, पर उसके तथा कुमार के सम्बन्धों के बीच उसका स्वर्गस्थ पति देव एक दीवार बन कर खड़ा है। पहले वह देव को दोषित मानती थी। पर कुमार ने अपने विवाह की जो बात बतायी उससे उसे सही स्थिति का ज्ञान हो गया। वह कुमार से कहती है: 'यह वह (देव) नहीं था जिसने अपना सबकुछ मुझे नहीं दिया... जिसने अपना बहुत कुछ अपने तक समेटकर रखे रखा, वह मैं थी। मैंने ही पहले दिन से खुल कर अपने-आप को उसे नहीं दिया... उसके साथ सम्बन्ध को 'सहने' का सम्बन्ध मानने की शुरूआत मेरी ओर से हुई थी। उसने एक खुला पन्ना मेरे सामने रखा था जिस पर मैं कभी ठीक से हस्ताक्षर नहीं कर पायी। मैंने जो कुछ उसे दिया या देना चाहा, उसमें बहुत कुछ कृत्रिम था। तुम में इतनी निर्ममता है कि तुमने एक अवास्तविक सम्बन्ध से अपने को बिलकुल काट लिया है। उसकी दुर्बलता थी कि वह मेरे साथ निर्मम नहीं हो सका। आज तक सोचती थी कि सुख मुझे नहीं मिला... देव के कारण। पर इससमय लग रहा है कि मुझ से कहीं अधिक वंचित व्यक्ति वह स्वयं था और कारण मैं थी।'[1] श्यामा के इस कथन से उसके देव के साथ के दाम्पत्य-जीवन की असफलता का रहस्य प्रकट होता है और साथ ही उसके चरित्र की रेखाएं भी उभरती हैं।

पात्र के विभिन्न प्रसंगों एवं विभिन्न पात्रों के सन्दर्भ में कहे गये कथोपकथन के विचार तथा अभिव्यक्ति की विशेषता उसके चरित्र को स्पष्ट करने के साथ साथ उसके मानसिक स्तर को भी उद्घाटित करते हैं। 'आधा गांव' के फुन्ननमियां दो-टूक बात करनेवाले निखालस पर कुछ उग्र स्वभाववाले व्यक्ति हैं। उनके प्रत्येक वाक्य से उनका यह चरित्र अभिव्यंजित होता है। जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के साथ ही सैयदों की अकड़ ठिकाने आ जाती है। अब अब्बू मियां अपनी कुबरा और सैयदा का पैगाम हम्माद के यहां भेजते हैं, जिनकी हड्डी दागी मानी जाती थी। इस पर फुन्ननमियां अपनी पत्नी कुलसुम से कहा गया निम्न कथन उनके

---

१. 'अन्तराल' : मोहन राकेश : पृ० २१४-२१५।

चरित्र को भलीभांति प्रकट करता है : " मतलब ई कि सब अकड़ ज़मींदारी की रही । ओ की हड्डी अच्छी है... ओ की खराब है । चल हम तैं निकाह पढ़वाकर दू-चार ठो हलाली औलाद पैदा कर लैं.... बे-लड़कनने घरवा बल्लचोद भी कबरिस्तान लगता है ।"[1] गालियां भी कुछ पात्रों के व्यक्तित्व की रेखाओं को उभारने में कई बार सहायक सिद्ध होती हैं । 'आधा गांव', 'सूखता हुआ तालाब', 'राग दरबारी', 'मुरदा घर' प्रभृति उपन्यासों के कुछ पात्रों के मुंह से यदि उनकी गालियां छीन ली जायं तो वे निहायत फीके-से लगेंगे ।

उपन्यास में एक पात्र जब दूसरे पात्र के सम्बन्ध में कुछ कहता है तब पात्र का चरित्र तो व्यक्त होता ही है, साथ ही स्वयं बोलनेवाले पात्र का चरित्र भी व्यंजित हो जाता है । 'अन्धेरे बन्द कमरे' की नीलिमा जब हरबंस के सम्बन्ध में मधुसूदन से बात करती है तब हरबंस और नीलिमा दोनों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है : " तुम समझते हो कि तुम उसे ज़्यादा जानते हो ? उसने यह सब क्यों किया, यह मैं अच्छी तरह जानती हूं । उसे मेरी क्या ज़रूरत थी और क्या नहीं, यह भी अच्छी तरह जानती हूं । अपने स्वार्थ के लिए उसने कई बार दीन बन होकर भी मुझ से समझौता किया है । जिस तरह वह दोनों वक्त खाना खाये बगैर नहीं रह सकता, उसी तरह वह मेरे बगैर भी नहीं रह सकता । उसके लिए यह सिर्फ एक भूख का सवाल है । मगर अब मैं उसकी भूख का सामान बनकर नहीं रहना चाहती । उसने आज तक यह नहीं समझा कि मैं एक चीज़ नहीं, एक इन्सान हूं, और मेरी भी अपनी ज़रूरतें हैं ।"[2]

दो पात्रों का पारस्परिक कथोपकथन भी उन पात्रों के मानसिक स्तर को उद्घाटित करने में कई बार सहायक होता है । श्रीलाल शुक्ल कृत 'सीमाएं टूटती हैं' में प्रोफेसर तथा चन्द्रा के निम्न कथोपकथन से उनकी शिक्षा, ज्ञान, स्व प्रकृति, रुचि-अभिरुचि आदि पर भी प्रकाश पड़ता है :

" हम दूर तक टहलने नहीं जा सकते । भीगने का डर है ।"

" आप को भीगने से डर लगता है ?"

" मुझे किसी चीज़ से डर नहीं लगता ।"

" शादी से ?

चांद ने उसे घूरकर देखा । प्रोफेसर ने कहा, " सारी । वह सवाल काट दीजिए । कोर्स में नहीं है ।"

1. 'आधा गांव' : पृ. 334-335 । 2. 'अंधेरे बन्द कमरे' : पृ. 424 ।

'सवाल में कोई खराबी नहीं है। मुझे इसका जवाब आता है।'

'आप कुछ हक क्यों नहीं रही है?'

'क्या कहूं?'

'कुछ भी। नयी फिल्में, मिस इंडिया कान्टेस्ट, उषा अय्यर का गाना या जगजीतसिंह की गुज़लें.... ।'

'आप ने मुझे लड़कियों के उस गिरोह में लिख रखा है।'

'वह गिरोह बिलकुल ठीक है, फिर भी आप चाहें तो बंगला देश, इज़्रायल, यूनिवर्सिटी रिफार्म्स, एग्रिकल्चरल प्राइस कमीशन, मोनोपलीज़ एण्ड रिस्ट्रिक्टिव ट्रेड्स ऐक्ट अथ- किसी के भी बारे में .... ।'[1]

उपर्युक्त-कथन-में कथोपकथन से पात्रों के व्यवसाय, शिक्षा, संस्कार आदि पर तो प्रकाश पड़ता ही है, साथ ही साथ आधुनिक कही जानेवाली लड़कियों की बातों के विषय में मैं पर भी व्यंग्य किया गया है।

कई बार उपन्यास में कुछ पात्र मनोविश्लेषक के तौर पर आते हैं। ऐसे पत्र मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के ज्ञाता होते हैं और वे दूसरे पात्रों का मनोविश्लेषण प्रस्तुत कर उनकी गुत्थियों को समझने में सहायक होते हैं। पहले उपन्यासकार जो करता था, वह अब बहुत कुछ ऐसे पात्रों के द्वारा कहलवाया जाता है। 'रुकोगी नहीं राधिका?' के डैन, मनीश व विद्या तथा 'आपका बण्टी' के डा० जोशी और वकील चाचा आदि ऐसे ही पात्र हैं। राधिका डैन के प्रति कुछ 'फ्रेण्डली' है उसका कारण डैन के अनुसार यह है कि वह अपने पिता का प्रतिबिम्ब उसमें देखती है।[2] विद्या (राधिका की विमाता) राधिका का विवाह डैन से हो यह नहीं चाहती क्योंकि उसने राधिका की मन: ग्रन्थि को बराबर समझ लिया है। वह जानती है कियह निर्णय साधारणतया तौर पर नहीं लिया गया है। यह उनके विवाह से राधिका में विकसित 'इलेक्ट्रा काम्पलेक्स' का परिणाम है और वह भलीभांति जानती है कि इस काम्पलेक्स से ग्रसित होकर किए गए विवाह अन्तत: असफल ही होते हैं।[3]

---

१. 'सीमाएं टूटती हैं' : पृ० १७६-८१।

२. देखिए : 'रुकोगी नहीं राधिका?' : पृ० ३४।

३. देखिए : वही : पृ० ५६।

इसी उपन्यास में मनीश एक स्थान पर राधिका की मन:स्थिति का विश्लेषण करते हुए 'रिवर्स कल्चरल शाक' की बात करता है : "जब हम अपना देश छोड़कर जाते हैं, तो पहले छ: महीने हम एक कल्चरल शाक के दौरान बिताते हैं, जबकि हर कदम पर हमें अपना देश, अपनी संस्कृति ऊंची दिखायी देती है। फिर हम उस देश में रहने के आदी हो जाते हैं। दो साल, ढाई साल उस नये देश में रहकर उसके रीति-रिवाज के आदी होकर हम अपने देश में वापिस आते हैं, तो हमें एक धक्का दुबारा लगता है, रिवर्स कल्चरल शाक।"[1]

'आपका बण्टी' के वकील चाचा शकुन के स्वभाव का विश्लेषण करते हुए उसके बण्टी पर अधिक निर्भर रहने तथा उसी को जीवन का केन्द्र मानकर चलने की वृत्ति की आलोचना करते हैं। वह समझाते हैं कि बण्टी को हर समय अपने से दुबकाए रखने की उसकी आदत न केवल उसके लिए, अपितु बण्टी के लिए भी अहितकर है। इससे एक स्वस्थ बच्चे, और आगे चलकर एक स्वस्थ पुरुष के रूप में उसका विकास नहीं हो सकेगा।[2] डा० जोशी भी शकुन की इस बात की आलोचना करते हुए कहते हैं कि "लगता है तुम अपनी इस अर्जी को भी बण्टी के साथ ही पूरा करती हो।"[3] बण्टी को लेकर जब शकुन के मन में अनेक तर्क-वितर्क उठते हैं, तब उसे डॉ० जोशी की किसी सन्दर्भ में कही हुई बात का स्मरण हो आता है कि मनुष्य का तर्क भी उसके 'गिल्टी कान्शयस' का परिणाम है। मनुष्य अपने अपराध-बोध से मुक्त होने के लिए स्वयं को 'जस्टिफाई' करता है। अत: जहां 'जस्टिफिकेशन' है, वहां 'गिल्ट' अवश्य होता है।[4]

डा० जोशी से विवाह होने के उपरान्त मैनेजर से हुई किसी बात को लेकर शकुन जब नौकरी छोड़ने की बात करती है तब डा० जोशी जो कहते हैं उससे दोनों के चरित्र स्पष्ट होते हैं। "तुम नौकरी करो या छोड़ो यह बिलकुल तुम्हारी अपनी इच्छा पर है। पर छोड़ो तो कारण यह नहीं होना चाहिए।.... आज मैनेजर को आपत्ति हुई तो तुमने नौकरी छोड़ दी। कल शहरवालों को आपत्ति होगी तो तुम शहर छोड़ने को कहोगी। और ज़रूर होगी।

---

१. 'रुकोगी नहीं राधिका ?' : पृ० ११२। २. देखिए : 'आपका बण्टी' : पृ० ११४। ३. वही : पृ० ११५। ४. देखिए : वही : पृ० ११६।

छोटी जगह है... ऐसी बातें लोग आसानी से पचा नहीं पाते हैं। पर इस तरह कमजोर होने से कहीं काम चलता है, चल सकता है ? और सच पूछो तो आपत्ति बाहर नहीं होती है, कहीं मन के भीतर ही होती है। तभी तो हमें यह छोटी-छोटी बातें परेशान कर देती हैं।'[1]

पात्र के स्वगत-कथन (अन्तर्विवाद) तथा अन्तर्द्वन्द्व से भी उसके चरित्र की विशेषताएं प्रकाशित होती हैं। 'अन्तराल' की श्यामा अपने अन्तर्मन से कुमार के साथ जुड़ी हुई है। अत: उसके आने की कल्पना-मात्र से कुमार उसके मानस-पटल पर अंकित हो जाता है और वह उस काल्पनिक कुमार से बातें कर काल्पनिक आनन्द प्राप्त करती है। पृ० १२२ से १३२ तक यह आत्म-कथन चलता है, जिसमें अन्त तक आते-आते तो श्यामा की आन्तरिक वृत्तियाँ मानो बांध तोड़कर फूट पड़ती हैं :

'तब तक उसका शरीर कुमार की बांहों में चला जायगा और कुमार के होंठ उसके होंठों से आ मिलेंगे।

'मैंने तुम्हें इसलिए नहीं बुलाया था,' वह अपने होंठ परे हटाने की चेष्टा करेगी।

'तो किसलिए बुलाया था ?'

'मैंने बुलाया था इसलिए कि....' उससे वाक्य पूरा नहीं हो पाएगा। कुमार के शरीर ने तब नीचे आकर उसके शरीर को ढक दिया होगा।

'देखो फ़र्श ठण्डा है... ।'

'बताओ क्यों बुलाया था... क्यों बुलाया था तुमने मुझे ?' कुमार शब्द दोहराता जाएगा। वह अपने को उससे परे छिटकाने की कोशिश करेगी, पर कुमार के पागलपन के सामने कोई वश नहीं चल पाएगा उसका। बीच के कपड़ों का परदा हटाने के लिए कुमार के हाथ औंधा-सीधा प्रयत्न करते महसूस होंगे। वह उसकी कलाइयां पकड़कर उसे रोकने का हठ करेगी, पर तब तक उसका अस्तित्व एक पीड़ा, एक जलन में बदल चुका होगा। उसके मुंह से कुछ अस्पष्ट-सी ध्वनियां निकलेंगी और कुमार के बढ़ आते शरीर को अपने शरीर में लेकर वह एक पूर्ति, एक तृप्ति की आकांक्षा में खो जाएगी। परन्तु वह तृप्ति तृप्ति होगी या कि

---

१. 'आप का बण्टी' : पृ. २२८-२२६।

निराशा ? अपना-आप उससे भर जाएगा या और खाली महसूस होगा ? लकड़ी की रेलिंग हाथों के बोझ से चरमरा उठी । उसने अपने को संभाला ।"[1]

इसी प्रकार रमेश बक्षी कृत 'बैसाखियोंवाली इमारत' में उसका नायक पत्रकार जब वसुधा से हार मानकर वापिस लौटता है और शराब पीता है, तब बक्षीजी ने उस पत्रकार के सामने उसका प्रतिरूप उपस्थित कर दोनों के बीच एक सुन्दर अन्तर्विवाद प्रस्तुत किया है जिससे उसके चरित्र पर भलीभांति प्रकाश पड़ता है ।[2] श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'सीमाएं टूटती हैं' के तेरहवें प्रकरण में लेखक ने बहुत सफल अन्तर्विवादों का प्रयोग किया है जिन से विमल सलूजा की गभराहट तथा चन्द्रा को लेकर उसकी पेशोपेश कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त हो जाती है ।[3] इस प्रकार के स्वगत कथन (अन्तर्विवाद) 'तमस', 'उग्रतारा', 'इमरतिया', 'अन्धेरे बन्द कमरे', 'अनदेखे अनजान पुल' तथा 'अठारह सूरज के पौधे' प्रभृति उपन्यासों में भी बहुतायत से मिलते हैं । पात्र के अन्तर्मन को स्पष्ट करने में ये सहायक सिद्ध होते हैं ।

स्वगत-कथन की भांति व्यक्ति के भीतर चलनेवाले अन्तर्द्वन्द्व से भी पात्र का चरित्र उद्घाटित होता है । 'अन्धेरे बन्द कमरे' के अन्तिम पृष्ठों में नीलिमा के अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित करनेवाले कथोपकथन, 'जल टूटता हुआ' में पृ० ३८६ पर अंकित सतीश का तथा 'सूखता हुआ तालाब' में पृ० १०४ पर अंकित देवप्रकाश का आत्मप्रलाप क्रमशः नीलिमा, सतीश और देवप्रकाश के चरित्रों को उद्घाटित करने में सक्षम हैं ।

पात्र के चरित्रोद्घाटन में कई बार उपन्यासकार पत्र और डायरी आदि का भी प्रयोग करता है । 'अपने अपने अजनबी' के प्रथम भाग में योके की डायरी से उसके चरित्र पर काफी प्रकाश पड़ता है । इसी प्रकार 'अन्धेरे बन्द कमरे' के हरबंस के पत्र, 'आगामी अतीत' के डा० कमल बोस के पत्र, 'उग्रतारा' में उगनी द्वारा भभीखनसिंह को लिखा गया पत्र तथा 'आधा गांव' के हकीम साहब

---

१. 'अन्तराल' : पृ० १३१-१३२ । २. देखिए : 'बैसाखियोंवाली इमारतें' : पृ० १४२ । ३. देखिए : 'सीमाएं टूटती हैं' : पृ० १४६-१४७ ।

का पाकिस्तान में स्थित अपने पुत्र को लिखा गया पत्र आदि उन पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को रेखांकित करते हैं।

अनेक उपन्यासों में कार्य-कलापों के बीच अन्तर्द्वन्द्व तो आये ही हैं, जिन्हें हम यथास्थान लक्षित कर चुके हैं किन्तु पत्राचार के बीच-बीच में अन्तर्द्वन्द्व को स्पष्ट करना एक प्रयोग ही कहा जा सकता है। श्री लाल शुक्ल ने 'सीमाएं टूटती हैं' में पत्र के साथ पढ़नेवाले पात्र की स्वगतोक्तियों को रखकर दोनों पात्रों के चरित्र-वैचित्र्य को उद्घाटित किया है। राजनाथ एवं तारानाथ दोनों भाई हैं, किन्तु दोनों की प्रकृति में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। तारानाथ ने राजनाथ पर अपने पिता पर लगे हुए खून के आरोप के सम्बन्ध में एक पत्र लिखा है, जिस के कुछ अंश यहां उद्धृत हैं :

'मेरे साथ शंकर भी फैजाबाद गया था (साला पियक्कड़, भाई के पीछे हर जगह लगा रहता है।) हम दोनों डा० फड़के से मिले थे। तुम उनसे अगली बार ज़रूर मिलना। वे अपराध-शास्त्र के जाने-माने विद्वान् हैं, और बड़े आस्तिक हैं। (क्यों नहीं। भाई को आस्तिक ही मिलते हैं।)...... यह भी एक संयोग है कि पापा को फैजाबाद जेल में रखा गया है। वहीं अयोध्या है, जगन्निवास मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम की लीला भूमि। (ये लोग कितने फ़ज़ूल विशेषण इस्तेमाल करते हैं।)... कनक-भवन में भगवान् राम के दर्शन किये। (क्या कहा उन्होंने ?)... मैंने पापा के लिए प्रार्थना की कि वे जब तक जेल में हैं, इन्हीं गुणों का अपने में आरोपण करके दीनता से बचे रहें। (सीधे-सीधे राम ही बन जायें।)... कनक-भवन बड़ा सुखद और शान्त स्थान है.... फिर पूरे पैराग्राफ में कनक-भवन की गरिमा का वर्णन था। राजनाथ ने मन ही मन कहा, 'रानीखेत भी बड़ा सुखद और शान्त स्थान है।'[१]

उपरिनिर्दिष्ट उपादानों के अतिरिक्त स्वप्न-दिवास्वप्न, लेखन-अध्ययन, उद्धरण, मैत्री प्रभृति अनेक तत्व हैं जिनसे उपन्यास के चरित्रांकन में सहायता ली गयी है और जिन्हें हम पूर्ववर्ती विवेचन में यथास्थान लक्षित कर चुके हैं। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि हमारे अध्ययन की परिधि में आनेवाले उपन्यासों में चरित्रांकन की पूर्व निर्दिष्ट पद्धतियों को आवश्यकतानुसार अपनाया गया है।

---

१. 'सीमाएं टूटती हैं' : पृ० ६६-६७।

इन महत्वपूर्ण प्रविधियों के समन्वय में समानुपात कृति की कलात्मकता को उभारता या कहीं कहीं उक्त दृष्टिकोण से उसे असफल बनाता है। द्वितीयत: उपन्यासकार के सामने अपने पात्रों की एक स्पष्ट परिकल्पना होती है और इन प्रविधियों का आवश्यकतानुसार विनियोजन उस परिकल्पना को रूपाकार प्रदान करता है। इस सर्जना-प्रक्रिया के कारण ही विविध पात्र पाठक के हृदय से सीधा सम्पर्क स्थापित करते या उन्हें प्रभावित करते हैं, तो कभी कभी उनकी चेतना को उभारते भी हैं। इस विनियोजन के दृष्टिकोण पर विचार किया जाय तो 'अन्धेरे बन्द कमरे', 'अन्तराल', 'अठारह सूरज के पौधे', 'सीमाएं टूटती हैं', 'आधा गांव', 'इमरतिया', 'रेखा', 'आपका बण्टी' प्रभृति उपन्यासों को हम आलोच्य युग महत्वपूर्ण उपलब्धि कह सकते हैं।

पात्रों का वर्गीकरण : व्यावहारिक जगत में किसी भी व्यक्ति को सम्पूर्णतया जानना-समझना कठिन ही नहीं किन्तु एक प्रकार से असम्भव भी है। उपन्यास में निरूपित पात्रों की चेतना को पर्याप्त मात्रा में हम समझ सकते हैं, बशर्ते कि उसके लेखक को यह अभिप्रेत हो। यों तो प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में एक इकाई होता है और उसकी कार्बन कापी मिलना असम्भव है, तथापि अध्ययन की सुविधा के लिए हम उन्हें कुछ वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। यहां एक बात ध्यातव्य है कि पात्रों का यह वर्ग-भेद उपन्यासकार की रचना-प्रक्रिया का परिणाम है। उपन्यासकार जिस दृष्टि से पात्र को निरूपित करता है, वह दृष्टि ही उसे किसी वर्ग-विशेष की पंक्ति में उपस्थित करती है। पूर्ववर्ती विवेचन में उपन्यास के पात्रों को निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित किया गया है : (१) वर्ग-प्रधान चरित्र (Typical character), (२) व्यक्ति-प्रधान चरित्र (Individual character), (३) स्थिर चरित्र (Static character), (४) गति-शील चरित्र (Kinetic character)।

(१) वर्ग-प्रधान चरित्र : इस अध्याय के प्रारम्भ में पात्र की समाजगत विशेषताओं को निर्दिष्ट किया गया है। वर्ग-प्रधान चरित्र किसी वर्ग-विशेष का प्रतिनिधि बनकर आता है, अत: उसमें उस वर्ग की समाजगत विशेषताओं का प्राधान्य होता है। बृहद् सामाजिक कैनवास को लेकर लिखे गये उपन्यासों में ऐसे चरित्र प्राय: मिलते हैं।

'जल टूटता हुआ' के महीपसिंह, 'अलग अलग वैतरणी' के जैपालसिंह, 'आधा गांव' के कुंवरपालसिंह, 'धरती धन न अपना' के हरनामसिंह प्रभृति ज़मींदार वर्ग के पात्र हैं, अत: उनकी मान्यताएं, जीवन-प्रणाली व प्रकृति उस वर्ग के अनुरूप है। 'राग दरबारी' के प्राय: सभी चरित्र वर्ग-प्रधान हैं। वैद्यजी आधुनिक काल के तिकड़मी नेता-वर्ग के रूप्पन ग्रामीण छात्र-वर्ग के तो रंगनाथ इस युग के किंकर्तव्यविमूढ़ नपुंसक बुद्धिजीवी वर्ग के प्रतिनिधि हैं।

'कांचघर' तमाशा-मण्डली के परिवेश पर आधारित उपन्यास है, अत: उसमें निरूपित कावेरीबाई, अण्णाजी तथा चिमनभाई आदि पात्र तमाशा म मण्डलीवालों की समूची विशेषताओं को लेकर अवतरित हुए हैं।

'शहीद और शोहदे' के शंकरदयाल, जगदीशप्रसाद, देवीचरण, नागेश आदि पात्र ब्रिटीश सरकार के आई०सी० एस० आफिसर हैं, अत: उनमें अंग्रेजों के प्रति भक्ति, राष्ट्रवादी देशभक्तों के प्रति घृणा तथा उस वर्ग के अंग्रेज़ अफसरों के प्रति अहोभाव की भावनाएं मिलती हैं।

'एक चूहे की मौत' में प्राय: सभी पात्र अनामी हैं। उसमें सरकारी दफ्तरों में काम करनेवाले कर्मचारी वर्ग (मुंशीवर्ग-बाबूवर्ग) को लिया गया है। अत: उसके सभी पात्रों में उस वर्ग की सर्व-सामान्य विशेषताएं अपनी समग्र दुर्बलता-सबलता के साथ उपस्थित हुई हैं।

'मुरदा घर' में महानगरी बम्बई की झोंपड़पट्टी में जघन्य जीवन बितानेवाली मैना, बशीरन, मरियम, जैसी वेश्याओं के नारकीय जीवन को चित्रित किया गया है, अत: उन सब में भी उस वर्ग की तमाम विशेषताएं अंकित हैं।

'धरती धन न अपना' में पंजाब के एक गांव 'घोड़ेवाहा' के चमारों व हरिजनों के जीवन को आलेखित किया गया है। उसमें निरूपित काली, प्रतापी, ताई निहाली, बन्तो, प्रीतो, बाबा फत्तू आदि पात्र उस वर्ग के प्रतिनिधि रूप में आते हैं।

उसी प्रकार 'रेखा' के डा० प्रभाशंकर, 'टैराकोटा' के मि० खन्ना, 'प्रश्न और मरीचिका' के जयराज, 'कृष्णकली' में विवियन की आण्टी, 'प्रेम

अपवित्र नदी' के हीराचन्द कपूर तथा कुमार, 'तमस' का डिप्टी कलक्टर रिचर्ड, 'काला जल' के रज्जूमियां, 'आधा गांव' के हकीम साहब, 'आगामी अतीत' के डा० कमल बोस, 'चारु-चन्द्रलेख' के धीर शर्मा, 'पुनर्नवा' के आचार्य देवरात, गोपाल आर्यक तथा माढव्य आदि पात्र भी वर्गीकृत पात्रों की श्रेणी में परिगणित किये जा सकते हैं।

(२) व्यक्ति-प्रधान चरित्र : इस वर्ग के पात्रों में व्यक्तिगत वैशिष्ट्य सामाजिक विशेषताओं की तुलना में अधिक पाया जाता है। व्यक्ति-चरित्र को उद्घाटित करनेवाले उपन्यासों में प्राय: ऐसे पात्र मिलते हैं। यहां एक बात ध्यातव्य है कि इस वर्ग के चरित्रों में भी वर्गगत विशेषताएं होती हैं, किन्तु इस के अतिरिक्त उनमें कुछ ऐसा विशिष्ट होता है जिससे वे थोड़े पृथक् हो जाते हैं।

'कृष्णकली' की कली, 'रेखा' की रेखा, 'सीमाएं टूटती हैं' की चन्द्रा मलहोत्रा, 'टेराकोटा' की मिति, 'अन्धेरे बन्द कमरे' की नीलिमा तथा सुषमा श्रीवास्तव, 'छाया मत छूना मन' की कंचन, 'मत्रो मरजानी' की मित्रो, 'सूरजमुखी अंधेरे के' की रत्ती, 'रुकोगी नहीं राधिका ?' की राधिका, 'बैसाखियोंवाली इमारतें' की मिस जायसवाल, 'प्रश्न और मरीचिका' की रूपा आण्टी, 'मछली मरी हुई' की कल्याणी, 'डाक बंगला' इरा, 'आगामी अतीत की चांदनी, 'आपका बण्टी' की शकुन, 'प्रेम अपवित्र नदी' की शिवानी, 'उग्रतारा' की उगनी, 'जुलूस' की पवित्रा प्रभृति नारी-पात्र अपने विशिष्ट गुणों के कारण इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

उसी प्रकार पुरुष-पात्रों में 'सीमाएं टूटती हैं' के विमल सलूजा और प्रोफेसर, 'अन्धेरे बन्द कमरे' का हरबंस, 'डाक बंगला' का मि० बतरा, 'आगामी अतीत' का प्रशान्त, 'रुकोगी नहीं राधिका ?' का मनीश, बैसाखियोंवाली इमारतें' का अनाम पत्रकार, 'वे दिन' का अनाम नायक, 'प्रेम अपवित्र नदी' का विष्णुपद प्रभृति पात्र इस वर्ग में आते हैं।

वस्तुत: पात्र व्यक्ति एवं समाज का मिला-जुला रूप होता है। व्यक्तिगत वैशिष्ट्य जहां पात्र को जीवन्तता प्रदान करता है, वहां उसका आधिक्य उसे असाधारण (Abnormal) भी बना सकता है। अत: यदि उपन्यासकार

का उद्देश्य ऐसे पात्र का निर्माण करना न हो तो उसे इन ~~विशिष्टता~~ विशिष्टताओं के निरूपण में कलात्मक संयम का निर्वाह करना चाहिए ।

(३) स्थिर चरित्र : स्थिर चरित्र के जीवन में वैचारिक आरोह-अवरोह नहीं आते । उपन्यास के प्रारम्भ तथा अन्त में उनकी स्थिति प्राय: एक-सी होती है । उनके चरित्र में विकास की कोई गुंजायश नहीं मिलती । `छाया मत छूना मन` की वसुधा में उपन्यास के प्रारम्भ से ही आत्मपीड़क प्रवृत्ति मिलती है, और अन्त में वह उसी प्रकार घुट-घुटकर दम तोड़ देती है । `कृष्णकली` की माणिक तथा पन्ना भी आद्यन्त एकरस मिलती हैं । `पुनर्नवा` की मृणाल का चरित्र शुरू से आखिर तक एक जैसा है । `पचपन खम्भे लाल दीवारें` की सुषमा, `मित्रो मरजानी` की सुहागवन्ती, `मुक्तिबोध` की राज, `अलग अलग वैतरणी` की कनिया आदि नारी पात्र स्थिर-चरित्र की ~~को~~ कोटि में आते हैं । `सीमाएं टूटती हैं` का तारानाथ शुरू से ही आस्तिक प्रकृति का दिखता है । `एकाकीनी नहीं राधिका ?` के अदाय के चरित्र में भी आद्यन्त स्थिरता मिलती है । `प्रेम अपवित्र नदी` के हीराचन्द कपूर तथा कुमार के विचार आखिर तक `कपूरवालों` के खानदानी विचार रहे । `तमस` का रिचर्ड भी अन्त तक एक-सा ही रहता है । `राग दरबारी` के पात्र भी सम्पूर्ण उपन्यास में एक समान प्रवृत्तिवाले ही दिखते हैं । `टैराकोटा` का रोहित, `मछली मरी हुई` का डा० रघुवंश, `सफेद मेमने` का रामौतार, `मुरदा घर` का पोप्ट, `धरती धन न अपना` का मंगू, `अन्तराल` का कुमार प्रभृति पुरुष-पात्र भी इस वर्ग के अन्तर्गत आयेंगे ।

(४) गतिशील चरित्र : गतिशील चरित्रों के जीवन में अनेक आरोह-अवरोह आते हैं । व्यक्ति-प्रधान चरित्र प्राय: गतिशील होते हैं किन्तु यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति-प्रधान चरित्र गतिशील ही हो । `टैराकोटा` का रोहित व्यक्ति-प्रधान चरित्र होते हुए भी स्थिर चरित्र है, जबकि दूसरी ओर `पुनर्नवा` के आचार्य देवरात वर्गीकृत पात्र होते हुए भी गतिशील हैं ।

आलोच्य उपन्यासों के नारी-पात्रों में `कृष्णकली` की कली, `मछली मरी हुई` की कल्याणी, `प्रेम अपवित्र नदी` की शिवानी, `टैराकोटा` की मिति, `रेखा` की रेखा, `उग्रतारा` की उगनी, `जुलूस` की पवित्रा, `डाक

बंगला' की इरा,' छाया मत छूना मन' की कंचन,' काला जल' की बी-दारोगिन तथा सल्लो,' नदी फिर बह चली' की परबतिया,' जल टूटता हुआ' की बदमी,' कांचघर' की रत्ना और पुरुष-पात्रों में' प्रेम अपवित्र नदी' के विष्णुपद, विजय तथा पंचानन चोर(जो एक सामान्य चोर से विश्वविख्यात स्वामी बन जाता है),' उग्रतारा' का कामेश्वर,' डाक बंगला' का मि० बतरा,' धरती धन न अपना' का काली,' मछली मरी हुई' का निर्मल पद्मावत,' रेखा' का डा० योगेन्द्रनाथ,' रुकोगी नहीं राधिका ?' का मनीश,' आधा गांव' के फुन्ननमियां, तन्नू और सद्दन तथा' सीमाएं टूटती हैं' का विमल सलूजा आदि पात्र गतिशील चरित्र के अन्तर्गत आयेंगे ।

उपन्यास में गतिशील चरित्रों के समावेश से पाठकों की कुतूहल-वृत्ति तथा जिज्ञासा पोषित होती है। इससे चरित्रों की जीवन्तता और विश्वसनीयता बनी रहती है। फलत: उपन्यास रोचक बन पड़ता है।

द्विपरिमाण और त्रिपरिमाण पात्र : ई० एम० फार्स्टर ने अपने' आस्पेक्ट्स आफ़ नावेल' में उपन्यास के पात्रों को स्वरूप की दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया है : द्विपरिमाण पात्र (Flat character) और त्रिपरिमाण (Round character) । प्रथम प्रकार के पात्रों का सृजन किसी एक ही विचार, भावना अथवा गुण या अवगुण के आधार पर होता है। इस प्रकार के पात्रों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि पाठक इन पात्रों को तुरन्त ही पहचान लेता है। लेखक अपनी पूरी शक्ति के साथ ऐसे पात्रों की सहायता से अपना वक्तव्य प्रभविष्णु बना सकता है। ऐसे पात्रों को एक बार पहचान लेने के पश्चात् पाठक उन्हें कभी विस्मृत नहीं कर सकता ।' आधा गांव' के फुन्ननमियां,' काला जल' की बी-दारोगिन,' सांप और सीढ़ी' की धान मां,' जल टूटता हुआ' का कुंजु,' मुरदा घर' के जव्वार आर रोज़ी,' राग दरबारी' के वैद्यजी आदि इस प्रकार के ही ~~पत्र~~ पात्र हैं।

जबकि त्रिपरिमाण पात्र का सृजन किसी एक ही भावना, विचार, गुण या अवगुण के आधार पर नहीं होता, बल्कि अनेक भावनाओं, विचारों एवं गुण-अवगुण के ~~अक्षर~~ के संघात से उनका निर्माण होता है। पात्र यदि सचमुच त्रिपरिमाण है तो उसमें पाठक को आश्चर्यचकित करने की अतुल शक्ति ~~ह~~--

होती है। ऐसे पात्रों के सन्दर्भ में पाठक के पूर्वनिश्चित अनुमान सही नहीं निकलते। वे किस समय कैसा मोड़ लें यह कहना असम्भव होता है। `कृष्णकली` की कली, `रेखा` की रेखा, `मछली मरी हुई` का निर्मल पद्मावत, `टेराकोटा` की मिति, `अन्तराल` की श्यामा, `अन्धेरे बन्द कमरे` के नीलिमा और मधुसूदन, `डाक बंगला` की इरा, `सफेद मेमने` के जस्सू और डा० मानमल प्रभृति पात्र इस कोटि में आ सकते हैं।

प्रमुख, पार्श्वभौमिक, हेत्वर्थक तथा पत्ता पात्र : उपन्यास में पात्रों के प्राधान्य की दृष्टि से तीन विभाग होते हैं। प्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विभाग है प्रमुख पात्रों का। यह पात्र प्राय: समूचे उपन्यास की रंगभूमि में अग्रभाग में रहता है। उपन्यास के केन्द्र में इसी पात्र के जीवन की घटनाएं, इसी के चित्त के ~~विकार~~ विचार एवं भावनाओं का प्राधान्य पाया जाता है। उपन्यास के सभी महत्वपूर्ण प्रश्न इसी पात्र के इर्द-गिर्द संगुम्फित होते हैं। अन्य पात्रों के प्रति पाठक की श्रद्धा, सहानुभूति या तिरस्कार का लेखा-जोखा प्रमुखत: इसी पात्र को केन्द्र में रखकर किया जाता है। एक प्रकार से इसी पात्र के लिए उपन्यास का अस्तित्व होता है। यही कारण है कि एक उपन्यास का प्रमुख पात्र दूसरे उपन्यास के प्रमुख पात्र से नितान्त भिन्न होता है। प्रेमचन्द के बाद भी किसानों का चित्रण तो अनेक उपन्यासों में हुआ, परन्तु उनका `होरी` हिन्दी उपन्यास का एक अप्रतिम पात्र है। प्रमुख पात्रों में यदि कोई समानता होती है तो यही कि उनमें कोई समानता नहीं होती। रेखा, कृष्णकली, फुन्नन मियां, धान मां, परबतिया, वैधजी आदि चरित्र पाठकों की स्मृति पर बरसों छाये रहने की क्षमता रखते हैं।

प्रमुख पात्रों का विलोम पार्श्वभौमिक पात्र हैं। उपन्यास में इन पात्रों का महत्व क्षणिक होता है, तथापि उपन्यास में उनकी उपस्थिति अनिवार्य होती है क्योंकि इन पात्रों के द्वारा ही विश्वसनीय सामाजिक सन्दर्भ का निर्माण होता है। उपन्यास का प्रमुख पात्र जिस संसार में सांस लेता है, उस संसार का निर्माण इन्हीं छोटे-मोटे पात्रों से होता है। इनके अभाव में प्रमुख पात्र की प्रतीतिजन्यता संदिग्ध हो जाती है। सामाजिक सन्दर्भ के अभाव में प्रमुख पात्र विश्वसनीय बने हों, ऐसे उपन्यास क्वचित ही मिलेंगे, जबकि दूसरी ओर बहुत-से अच्छे उपन्यासों की श्रेष्ठता का एक कारण असंख्य पार्श्वभौमिक पात्रों द्वारा सर्जित

असंदिग्ध एवं प्रतीतिजन्य सामाजिक सन्दर्भ ही है। 'अलग अलग वैतरणी', 'जल टूटता हुआ', 'आधा गांव', 'काला जल', 'धरतीधन न अपना', 'मुरदा घर' जैसे उपन्यासों में पार्श्वभौमिक पात्रों के संसार से लेखकों ने प्रमुख पात्रों को उभारा है। अज्ञेय के उपन्यासों में बु इस संसार का अभाव कई विवेचकों को खलता है, इसका कारण भी यही है। दूसरी ओर रेणु, अश्क, नागरजी और यशपाल आदि के उपन्यासों की सफलता का मुख्य कारण भी इसी संसार की सम्पूर्ति है।

प्रमुख पात्र और पार्श्वभौमिक पात्र के बीच उपन्यास के पात्रों की एक तीसरी श्रेणी माध्यमिक पात्रों की है। स्वरूप की दृष्टि से हम इन पात्रों को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं -- हेत्वर्थक पात्र एवं पत्ता पात्र। हेत्वर्थक पात्रों का आलेखन ठीक ठीक व्यौरेवार हुआ हो, तो भी उपन्यास में उपन्यास में वे साधन-रूप ही हैं, साध्य नहीं। हेत्वर्थक पात्र उपन्यास में एकाधिक उद्देश्य से आते हैं। कई बार वे कृति में कोरस का कार्य करते हैं, कभी प्रमुख पात्र एवं समाज के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का सेतु-कार्य करते हैं, कभी प्रमुख पात्र के व्यक्तित्व से विरोधी व्यक्तित्व प्रस्तुत करते हैं, कभी प्रमुख पात्र की परिस्थितिजन्य द्विधा में निमित्त बनते हैं, कभी प्रमुख पात्र के दोषों एवं मर्यादाओं पर प्रकाश डालते हैं, कभी प्रमुख पात्र का वैकल्पिक व्यक्तित्व प्रस्तुत करते हैं तो कभी प्रमुख पात्र के समान्तर पात्र की भूमिका निभाते हैं। 'मुरदा घर' तथा 'आधा गांव' के बहुत से पात्र प्रथम हेतु की पूर्ति करते हैं। 'सूखता हुआ तालाब' में डा० सरोज, शंकर तथा जैराम आदि पात्र देवप्रकाश को शिकारपुर गांव से जोड़ने की चेष्टा करते हुए दृष्टिगत होते हैं। 'जल टूटता हुआ' का रामकुमार सतीश के और 'मुरदा घर' का जब्बार पोपट के व्यक्तित्व से विरोधी व्यक्तित्व को प्रस्तुत करते हैं। सतीश आदर्शवादी है, रामकुमार सुविधावादी। पोपट अपनी पत्नी को वैश्या बनने पर मजबूर करता है, तो जब्बार पत्नी वेश्या इसलिए पुलिस का अमानुषी अत्याचार भी सहन करने को उद्यत है। 'छाया मत छूना मन' की कंचन भी वसुधा से विरोधी व्यक्तित्व को लेकर अवतरित हुई है। पात्रों की ऐसी विसदृशता 'यह पथ बन्धु था' में भी उपलब्ध होती है। 'एकाकी नहीं राधिका ?' के मनीश, डैन एवं विद्या राधिका के व्यक्तित्व की कमियाँ एवं मर्यादाओं पर प्रकाश डालने का कार्य करते हैं। यही काम 'आपका बण्टी' में वकील चाचा और डा० जोशी करते हैं। 'सूखता हुआ

तालाब' में रवीन्द्र अपने पिता देवप्रकाश को उनकी मर्यादा की ओर संकेत करते हुए कहता है कि इस गांव में या तो बदमाश ही रह सकता है या हिजड़ा।[1]

'रेखा' में सोमेश्वर दयाल, डा० योगेन्द्रनाथ मिश्र और निरंजन कपूर जैसे पात्र रेखा की परिस्थितिजन्य द्विधा में निमित्त बनते हैं। 'मित्रो मरजानी' में मित्रो की मां का प्रेमी कुछ समय के लिए मित्रो में द्विधा पैदा करने में निमित्त होता है, परन्तु बाद में मां की नज़रों की भाषा पढ़कर वह संयत हो जाती है।

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की मीनाक्षी प्रमुख पात्र सुषमा के वैकल्पिक व्यक्तित्व के रूप में आयी है। जहां सुषमा आत्मपीड़न का मार्ग अपनाकर नील को छोड़ देती है, वहां मीनाक्षी एक बिज़नेसमैन से शादी कर लेती है।

'अलग अलग वैतरणी' के जग्गन मिसिर, 'राग दरबारी' के वैद्यजी, 'यात्राएं' की वन्या, 'तीसरा आदमी' का सुमन्त, 'एक चूहे की मौत' का चित्रकार 'ग' आदि पात्र उपन्यास के प्रमुख पात्रों के समान्तर पात्र के रूप में आये हैं।

पत्ता पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी अपरिवर्तनशीलता है। ताश के पत्तों पर के चित्रों की भांति वे रूढ़ या अचल होते हैं। चाहे जैसे संजोगों में भी ये पात्र अपनी प्रकृति नहीं बदलते। स्थिर चरित्र और पत्ता पात्र में यह अन्तर है कि स्थिर चरित्र प्रमुख पात्र भी हो सकते हैं, जबकि पत्ता पात्र माध्यमिक पात्रों का एक उपभेद है। दूसरे स्थिर चरित्र भी इतने रूढ़ या अचल नहीं होते। उपन्यास में आनेवाले पुलिस पात्र, होटल के बेयरे, नौकर-चाकर प्रभृति एक बंधी-बंधायी मुद्रा लेकर आते हैं। ऐसा नहीं कि इन पात्रों का अपना कोई वैशिष्ट्य नहीं होता। यदि उनके ही जीवन पर कोई उपन्यास लिखा जाय तो उनकी अन्य विशेषताएं उभरकर आ सकती हैं। सम्भवतः हिन्दी में अभी केवल पुलिस-वर्ग के जीवन पर कोई उपन्यास नहीं लिखा गया। केवल नागार्जुन के 'उग्रतारा' में इस अछूते पक्ष पर कुछ प्रकाश डाला गया है।

<u>अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी पात्र</u>: मनोविज्ञान के आधार पर पात्रों को दो विभागों में विभाजित कर सकते हैं -- अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी। पूर्ववर्ती विवेचन में निर्दिष्ट किया जा चुका

१. द्रष्टव्य: 'सूखता हुआ तालाब' : पृ. १०५।

है कि लिबिडो (काम-शक्ति) का आभ्यन्तर दिशा को पकड़ना अन्तर्मुखीकरण और बाह्य विषयों की ओर झुकना बहिर्मुखीकरण है। अन्तर्मुखी पात्रों में लिबिडो का अन्तर्मुखीकरण होता है, अत: ऐसे पात्र आत्मकेन्द्रित होते हैं। उनकी सारी बुद्धि-प्रतिभा का व्यय उनके आन्तरिक जगत के निर्माण में होता है। ऐसे पात्र निजानन्द या निज दु:ख में डूबे रहनेवाले होते हैं। उपन्यासकारों का व्यक्तित्व भी कई बार ऐसे पात्रों के निर्माण में कारणभूत होता है। जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि प्रकृत्या ही अन्तर्मुखी हैं, अत: उन्होंने अधिकांशत: अन्तर्मुखी पात्रों का निर्माण किया है। `पचपन खम्भे लाल दीवारें` की सुषमा, `छाया मत छूना मन` की वसुधा, `आगामी अतीत` की चन्दा, `लाल टीन की छत` की काया, कड़ियाँ की प्रमिला, `आधा गाँव` के तन्नू तथा कम्मो, `काला जल` का बब्बन, `कृष्ण-कली` की पन्ना, `अठारह सूरज के पौधे` का अनाम नायक, `वे दिन` का अनाम नायक, `सूरजमुखी अन्धेरे के` की रत्ती, `पुनर्नवा` की मृणाल, `सूखता हुआ तालाब` के देवप्रकाश, `अलग अलग वैतरणी` का विपिन, `जल टूटता हुआ` का कुंजू आदि पात्रों को हम इस कोटि में गिना सकते हैं।

बहिर्मुखी पात्रों में `लिबिडो` का विकास बाहर की ओर होता है, अत: ऐसे पात्र आत्म-रति से बचकर स्वयं को जन-समुद्र में डाल देते हैं। उनके अधिकांश कार्य-कलाप समाजाभिमुखी होते हैं। ऐसे पात्रों में समाज तथा समाज की नाना प्रवृत्तियों के लिए अभिरूचि व तत्परता मिलती है। `टैराकोटा` की मिति, `कृष्णकली` की कली, `मित्रो मरजानी` की मित्रो, `डाबक काला` की इरा, `छाया मत छूना मन` की कंचन, `पुनर्नवा` की चन्द्रा, `चारु-चन्द्रलेख` की मैना, `काला जल` का मोहसिन, `आधा गाँव` के फुन्नन मियाँ, जवाद मियाँ, मिगदाद, सद्दन आदि, `जल टूटता हुआ` का सतीश, `अलग अलग वैतरणी` के मास्टर शशिकान्त और जग्गन मिसिर, `मुरदा घर` के मैना, पोपट और जब्बार आदि, `धरती धन न अपना` के काली, प्रीतो, ताई निहाली, बाबा फत्तू प्रभृति पात्र बहिर्मुखी प्रकृति के हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हम पात्रों पर कोई भी लेबल` लगावें, यह निश्चित है कि ये सभी प्रकार के पात्र उपन्यास में आवश्यक हैं। अत्याधुनिक उपन्यासों में घटना-लोप के प्रयोग हुए हैं, किन्तु पात्र-लोप का प्रयोग अभी तक हमारे जाने नहीं हुआ है।

उपन्यास में चरित्रांकन की श्रेष्ठता के मानदण्ड : उपन्यास के पात्र हमारी अपनी दुनिया के हैं यह बात इतनी स्वयंसिद्ध है कि उसकी चर्चा अनावश्यक है। अत: यह निर्विवादित सत्य है कि उपन्यास में चरित्र का निर्माण प्रतीतिजनक होना चाहिए। इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध औपन्यासिक थैकरे का यह मत उल्लेखनीय है कि मैं अपने पात्रों को वश में नहीं रख पाता। मैं उन्हें वशवर्ती हो जाता हूं और वे मुझे जहां चाहे ले जाते हैं।[1] उपन्यास में जहां उसका रचयिता चरित्रों पर हावी हो जाता है, वहां चरित्रांकन पर व्याघात पहुंचता है। उपन्यासकार का 'रोल' भेड़ों को हांकनेवाले गड़रिये का 'रोल' नहीं है।

उपन्यास को चरित्र-सृष्टि में लेखक की विशिष्ट दृष्टि साधन-रूप में आनी चाहिए, साध्यरूप में नहीं। संसार के किसी भी व्यक्ति को किसी भी दृष्टि से देखा-समझा जा सकता है, किन्तु उस दृष्टि के अनुसार पात्र का निर्माण करना कृत्रिम पात्र-की सृष्टि करना होता। कुछ आलोचकों को 'गोदान' में के होरी में विद्रोह-भावना की कमी का अनुभव होता है, क्योंकि 'गोदान' के रचना-काल के समय में रूस में क्रान्ति हो चुकी थी। परन्तु प्रेमचन्दजी महान जनवादी कलाकार होने के बावजूद उन लोगों में नहीं जो रूस में बारिश होने पर यहां छाता खोलकर खड़े हो जायं। इस समय में जब गांवों में छोटे किसानों की स्थिति खेत-मजदूरों से बेहतर नहीं है तो उस समय कैसे हो सकती है? ऐसा करना तो वास्तविकता का गला घोंटने जैसा होगा। होरी भले ही विद्रोह नहीं करता, किन्तु पाठक को संवेदनशील बनाकर विद्रोह के लिए प्रेरित अवश्य करता है। इसका कलागत सूक्ष्मता के रूप में विचार किया जाना चाहिए। शरदबाबू को किसी ने पूछा कि स्त्रियों की ज़बरदस्त वकालत के बावजूद आपने अपने किसी उपन्यास में विधवा-विवाह क्यों नहीं करवाया? तब शरदबाबू ने कहा कि मैंने तो नारी की करुण दयनीय अवस्था को चित्रित किया है। विधवा-विवाह कराना मेरा काम नहीं, समाज का काम है। समाज में यदि विधवा-विवाह होने लगेंगे, तो उपन्यास में भी आयेंगे।

---

१. "I do not control my characters, I am in their hands and they take me where they please.
:An introduction to the study of literature :Hudson P.144.

जगदीशचन्द्र के ' धरती धन अपना ' में काली नामक एक हरिजन युवक के संघर्ष को लेखक ने चित्रित किया है। पर अन्त में काली टूट जाता है। एक मकान बनाने की लालसा को सदा सदा के लिए खत्म कर वह गांव से भाग जाता है। कोई कहता है कि कुएं में गिरकर मर गया, कोई कहता है कि रेल से कटकर आत्महत्या कर ली। अब यहां काली का यह अन्त हमारे समाज की वास्तविकता है। आज भी हरिजनों पर अत्याचार होते हैं। बेलछी और रणमलपुरा के काण्ड इसके उदाहरण हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि उपन्यास में चरित्र की वास्तविकता का ही महत्व है, दृष्टि का नहीं। इसी के कारण उसकी यथार्थता सार्थक होती है। व्यक्ति को किसी भी दृष्टि से देखिए -- मनोविश्लेषणवादी, मार्क्सवादी, गांधीवादी -- किन्तु व्यक्ति की सही पहचान उसके सामाजिक सन्दर्भों के साथ पात्र के रूप में उभरनी चाहिए।